संस्कृतविभाग:
लेडीश्रीराममहाविद्यालय:

तेजस्

ज्ञानदीप्तिरेवात्मानं प्रकाशयेत्

(तृतीयोऽङ्क: २०१८-२०१९)

तेजस्

"ज्ञानदीप्तिरेवात्मानं प्रकाशयेत्"

Published in New Delhi by:
Department of Sanskrit
Lady Shri Ram College for women
Lajpat Nagar-IV,
New Delhi, 110024
Phone: 011-26434459

Copyright © Department of Sanskrit,
Lady Shri Ram College for Women, 2017.

Printed by:
Darshan Graphic Designers
62A, Bapupark,
Kotla, Mubarakpur
New Delhi .

The moral rights of the contributing authors have been asserted.
No part of this publication may be reproduced or transmitted, in any form or by any means without prior permission in writing of the Department of Sanskrit, Lady Shri Ram College for Women, New Delhi.

ADVISORY & EDITORIAL BOARD

FACULTY ADVISORS
Dr. Vanadana S.Bhan
Dr. Kamini Kumari

EDITOR-IN-CHIEF
Nidhi Jha

SUB-EDITORS
Khusboo Basoya
Sristi Sharma
Swati Jha

COVER ART
Vaishali Vats

'तेजस्' संस्कृतविभागस्य लेडीश्रीराममहाविद्यालयस्य वार्षिकाकादमीया पत्रिका वर्तते। 'तेजस्' एकश्शब्दो वर्तते यस्यार्थः 'दीप्तिः' उत "दिव्यज्ञानं"। एतया तेजोनामधेयया पत्रिकया स्नातकछात्रसंकायसदस्यैः विभागस्यपूर्वछात्रैश्चोल्लिखितस्य शोधपत्राणामान्त्रणं क्रियते। पत्रिकेयं संस्कृतनिहितविभिन्नविषयमेकीकरोति। यो विषयः पारम्परिकविचारे नव्यतावर्द्धनाय तं विकासाय संङ्कल्पितः।

अस्माकमुद्देश्यमेकादृशम्मञ्च प्रदानं विद्यते यत्राभिव्यक्तिविकासस्य संस्कृतस्य च विभिन्नस्तरस्य विचारः क्रियते ।

From the Editor's Desk

Greetings to the LSR community! The academic year of 2018-19 has been increasingly distinguished and eventful year for the Department of Sanskrit, Lady Shri Ram College for Women. Mired with recognition of the great talent that the student community showed at various platforms offered by universities all across Delhi NCR, this year perhaps will be seen as the landmark year for many first time initiatives by the department like "Sanskrit Spoken Workshop for College Students", "Sanskrit MUN", "Sanskrit Flash mob", etc. in the college. The numerous accolades and achievements garnered by the student family and well supported by the able and efficient faculty members helped the department grow by leap and bounds this year. The rich and vivid entries as the readers will see for themselves in this third edition of our academic journal "TEJAS" stand as a living testament for my belief in the department that it will continue to grow for years to come and the family will continue strive for excellence in the pursuit of knowledge. In fact, it is this guiding light which is also our college motto _ "सा विद्या या विमुक्तये" that has kept us going and moving forward in times of thick and thin and will continue to do so. I hope readers will get a glimpse of our undying spirit and firmness to our principles of academic excellence and commitment to inclusivity and openness in this edition.

This journal would not have been possible without the constant support of our faculty advisors Dr, Vandana S. Bhan and Dr. Kamini Kumari.

I can't thank enough the editorial board, who reviewed and suggested editorial and design changes at various production levels. From the front cover to all the way to the last page, this journal has been a collaborative effort in the truest sense. Here's a toast to everyone who was involved in this remarkable journey.

Regards,

Nidhi Jha

अनुक्रमणिका

तेजस् (निधि झा)

हिन्दीभागः **पृष्ठ-संख्या**

1. उपनिषदों में गणितीय सिद्धान्त (डॉ. वंदना एस. भान) 01

2. वैदिक धर्म का स्वरूप (डॉ. अजित कुमार) 04

3. सिद्धान्तपदार्थ (डॉ.सुशीला महरिया) 07

4. संस्कृत एवं फारसी भाषा की एकात्मकता (नेहा कुमारी) 12

5. कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित व्यवहार की व्यवस्था (आरुषि निगम) 14

6. याज्ञवल्क्य स्मृति में स्त्रीधन के प्रकार का वर्णन (रिया भारद्वाज) 18

7. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय चिंतन (निधि झा) 20

8. गीता का कर्मयोग तथा आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता (मंशा जाट) 22

9. योग का स्वरूप (सद्भावना मोहन) 25

10. पंचतंत्र की कथा और शैली (खुशबू बसोया) 28

अंग्रेजीभागः

1. Gandhian critique on Modernity (Dr. Shinumol T.C) 30

2. Academic Aspect of Sanskrit in Varanasi (Rajal Rajpurohit) 36

3. Begin Again (Neelam Devtala) 37

4. Ganikas- The Silent Voices of History (Shreya Sinha) 39

5. Review of Kumarsambhavam by Kalidasa (Rajlakshmi) 40

6. Technology Adoption in Agriculture in India: A Theoretical and Empirical Analysis (Tanya Singh) 42

7. Insights into Hindu Mythology: Revisiting Madhubani Paintings (Kritika Chaudhary and Vrinda Goal) 45

संस्कृतभागः

1. आतंकवादनिरोधनार्थं संस्कृतोपाया: (स्वातिझा) 54

2. भासस्य नाटके जीवनस्य अनुभव: (वंशिकातिवारी).....55

3. श्रीअरविंदस्य योगावधारणा (डॉ. कामिनीकुमारी) 56

तेजस्

निधि झा
तृतीय वर्ष, संस्कृत विभाग

ऋग्वेदे येषां देवानां शंसनं वर्तते ते सर्वे देवस्वभावाः प्रकाशतत्तवेन सम्बद्धाः सन्ति। बहुशः देवाः पृथिव्यन्तरिक्षाकाशानां विविधप्राकृतिकतत्त्वानां अभिव्यक्तव्यः सन्ति। ये हि न तथा तेऽपि तेष्वेव समाहृताः इति प्राचां भारतीयानां वेदज्ञानां अभिमतिः। वैदिका ऋषयः प्रकृतेः स्थूलस्वरूपस्य स्तुतिम् उपेक्षयन्तः तदभिमानि-चेतनतत्तवस्य संशेन अनुरक्ताःआसन्। यथा अग्रेः देदीप्यमानः तेजोयुक्तं भौतिकस्वरूपम् सर्वैः अनुभूयते। किञ्च तत्त्वतः एकएवाग्नित्रिषु लोकेषु प्रकाशते। पृथिव्यां प्रकाशमानः दाहकोऽग्निः सर्वेषां जीवितभूतः आकाशे वैद्युताग्निः वृष्टिप्रेरकः अन्तरिक्षे च सूर्यरूपः जगतः प्रसविता प्रसिद्ध एव । अग्निः सर्वदेवस्वरुपः उक्तः-

अग्ने यत्ते दिवि वर्च पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र। येनान्तरिक्षमुवार्ततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥ (यजुर्वेद१२.४८)

ऋग्वेदस्य आद्यमंत्रे अग्निरेव स्तुतः। यद्यपि वैदिकमंत्रेषु भौतिकपाचकाग्निः नैव स्तुतः अपितु तस्य तात्त्विकं रुपमेव । अग्निशब्दः 'अञ्चु गतिपूजनयोः' इत्यस्माद्धातोः निष्पद्यते- गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति । पूजनं नाम सत्कारः 'योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति सोऽयमग्निः। वैदिकवाङ्मये अग्निः अङ्गिरसितिनाम्ना प्रसिद्धः 'अङ्गिरस्' इति शब्दस्य अञ्जधातोः निष्पत्तिः। तथा हि तेजोयुक्तत्वं सर्वत्र वैदिकवाङ्मये वर्णितम्। भारतीयपरम्परया आधुनिकः वेदव्याख्याता दयानंदः वैदिक मंत्रानाम अध्यात्मपरम् अर्थम् अकरोत्। ऋग्वेदेप्रकाशार्थकः स्वर्शब्दः स्वर्गसूर्ययोः अभिधायाकः। वस्तुतः स्वर्सूर-सूर्यादीनांशब्दानां प्रकाशमेवार्थः। अग्रेः सूर्यरूपः उक्तः। स्वर्णरम् इति पदं इन्द्रागयुदकादित्यानां विशेषणत्वेनप्रयुक्तः ऋग्वेदे। समस्तपदत्वेनास्य प्रयोगस्थलेषु ऋग्वेदे उपलभ्यते। एकस्मिन्मन्त्रे इदं पदं व्यक्तिविशेषस्याभिधायकम्। ब्राह्मणग्रन्थेषु स्वरितिपदं प्रजापतेः द्युलोकस्य च व्यञ्जकम्। अग्निः'स्वर्णरम्' इत्युक्तः यतोहि सः सूर्यप्रजापतिद्युलोकदीनां प्रतीकभूतः। एवमेव ऋग्वेदे(२.२.१) स्वर्णरम् इति शब्दः सूर्यस्य वाचकः सोऽपि अग्रेरेवरूपतया- ऋग्वेद.२.२१.१ स्वर्जिते पदम् प्रयुक्तम् सायणगेल्डनरग्रिफिथेषु स्वरिति पदस्य व्याख्यायां नास्ति मतैक्यम्। सायणः स्वर्जिते इति पदं स्वर्गस्यजेत्रेऽधिपतये' इति व्याख्याति, गेल्डनरः स्वरिति पदं 'सूर्यस्यप्रकाशः' इति अनुवदति। ग्रिफिथः प्रकाशइत्यर्थयति। अग्निरूपः सूर्यः देवानां अनीकः उक्तः। अनीकशब्दस्य त्रयोऽर्थाः तेजः, मुखं, समूहश्च। स्वनीकशब्दस्यापि ऋग्वेदे पञ्चस्थलेषु प्रयोगः दृश्यते। सर्वे व्याख्यातारः अस्य शब्दस्य अनुवदनं 'सुतेजस्कः' 'द्युञ्चाल' इति रूपेण कुर्वन्ति। अनीकशब्दः अन्+ईकन्(उणादी४.१६.१७) इतिप्रत्ययेन निष्पद्यते- अनितिजीवत्यनेन अनीकम्। ब्राह्मणग्रन्थेषु अग्निः देवतानां अनीकम् उक्तः।

उपनिषदों में गणितीय सिद्धान्त

डॉ. वन्दना एस. भान
असिस्टेंट प्रोफेसर ,संस्कृत विभाग

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति॥[1]

इस संसार में ब्रह्म की सर्वोच्च सत्ता तथा महिमा का द्योतक तैत्तिरीयोपनिषद् का उपर्युक्त मन्त्र सम्पूर्ण उपनिषद् साहित्य के सारतत्त्व के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है। वैदिक साहित्य में उपनिषदों का स्थान आरण्यक ग्रन्थों के पश्चात् आता है। मानवमात्र के आध्यात्मिक एवं बौद्धिक कल्याण की दृष्टि से उपनिषदों का प्रतिपाद्य अत्यन्त उपादेय है। इनमें ब्रह्म के स्वरूप, जीव तथा ब्रह्म के ऐक्य, कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्मसिद्धान्त, सांसारिक विषयों की क्षणभंगुरता तथा ज्ञान द्वारा मोक्षप्राप्ति आदि अनेक विषयों पर अप्रमेय एवं विस्तृत विचार-मंथन किया गया है। गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से इन सभी विषयों का विवेचन अत्यन्त सरस, सुबोध एवं सारगर्भित शैली में किया गया है।

उपनिषदों के प्रतिपाद्य में विविध विद्याओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है, ब्रह्मविद्या, परा तथा अपरा विद्या, उद्गीथविद्या, अग्निविद्या, सारस्वतीविद्या आदि। इन विद्याओं का भारतीय लोकमानस तथा वैश्विक मानव-चेतना पर तो प्रभाव पड़ा ही है, साथ ही इन विद्याओं का दार्शनिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व भी है। कठोपनिषद् के निम्न मन्त्र द्वारा मानव-मात्र के लिए उपनिषदों के महत्त्व का स्वतः परिचय मिलता जाता है–

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति॥[2]

उपनिषदों में गणितीय सिद्धान्तों अथवा तत्त्वों के प्रतिपादन पर विचार करने से पूर्व गणितशास्त्र के महत्व पर सामान्य दृष्टिपात अपेक्षित है। संसार की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी नियम से नियन्त्रित होती है तथा प्रत्येक वस्तु में गति पाई जाती है। इस नियम तथा गति का साक्षात् सम्बन्ध गणित से है। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह, तथा पृथ्वी की गति का ज्ञान हो अथवा ज्योतिष शास्त्र की गणना का कार्य – इन सबका आधार गणितशास्त्र ही है। वेदाङ्ग ज्योतिष में गणितशास्त्र को सर्वोच्च स्थान प्रदान करते हुए इस प्रकार कहा गया है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद् वेदांगशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥[3]

उपनिषद् साहित्य में गणितशास्त्र विषयक तत्त्वान्वेषण से पूर्व यह तथ्य अवधरणीय है कि उपनिषद् मूलतः ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं तथा यह विषय पूर्णतः पारलौकिक है न कि लौकिक। जबकि गणितशास्त्र लौकिक विद्याओं से सम्बन्ध एक विषय है। उपनिषदों के परिशीलन से ज्ञात होता है की इनमें गणितविद्या अथवा सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष रूप से

प्रतिपादन अथवा विवेचन उपलब्ध नहीं होता। किन्तु अनेक स्थलों पर ऐसे प्रसंग अथवा मन्त्र अवश्य उपलब्ध होते हैं जिन्हें अप्रत्यक्ष रूप से गणितशास्त्र से सम्बद्ध माना जा सकता है। सर्वप्रथम ईशावास्योपनिषद् के आरम्भ में श्रुतिमन्त्र को ही लिया जाए –

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात् पूर्णं उदचयते।
पूर्णस्य पूर्णं आधार पूर्णं एवं अविशष्यते॥[4]

परमात्मा के जगत में पूर्णता रुपी विशिष्टता का परिचय देते हुए उपर्युक्त मन्त्र द्वारा स्पष्ट रूप से शून्य की संख्या की ओर संकेत होता है। जिस प्रकार शून्य में से शून्य को निकल लेने से भी शून्य ही शेष बचता है उसी प्रकार पूर्ण में से पूर्ण निकल लेने से भी पूर्ण ही बचता है। शून्य आकाश की भाँति एक पूर्ण संख्या है। उसमें से कुछ घटाने आदि से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

छान्दोग्योपनिषद् में गणितशास्त्र का 'राशिविद्या' तथा ज्योतिषशास्त्र का नक्षत्रविद्या नाम से उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रसंग मिलता है कि सदा कुमार रूप में रहने वाले ऋषि सनत्कुमार के पास जाकर नारद मुनि ने जब ज्ञान पाने की इच्छा प्रकट की, तब सनत्कुमार ने नारदमुनि द्वारा पूर्वाधीत विद्याओं के विषय में पूछा। तब उन विद्याओं में नारदमुनि ने राशिविद्या तथा नक्षत्र विद्या का भी उल्लेख किया -

स होवाच – ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि....
राशिं दैवं निधिं... नक्षत्रविद्याम्... अध्येमि।[5]

यहाँ राशिविद्या से अभिप्राय है अंकगणित तथा नक्षत्रविद्या ज्योतिषशास्त्र की द्योतक है। उक्त प्रसंग से प्रतीत होता है कि अध्यात्म तथा पराविद्या के जिज्ञासु व्यक्ति के लिए अन्य विद्याओं के साथ - साथ गणित तथा ज्योतिष का ज्ञान भी अपेक्षित था। नक्षत्रविद्या का प्रयोग नियमित रूप से काल गणना में तथा तिथियों को व्यक्त करने के लिए किया जाता था तथा यह सब किसी न किसी रूप से गणितीय सिद्धांतो पर आश्रित था। मुण्डकोपनिषद के आरम्भ में जानने योग्य दो विद्याओं – परा तथा अपरा का विस्तृत विवेचन करने के प्रसंग में अपरा विद्या के अंतर्गत छन्द तथा ज्योतिष – इन दोनों शास्त्रों का भी उल्लेख किया गया है - **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं**
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते॥[6]

उपर्युक्त दोनों शास्त्रों-छन्द तथा ज्योतिष के सम्यक् ज्ञान के लिए गणितशास्त्र का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। वेदों में छन्द-रचना के मूल में भी गणित विद्यमान है – इस तथ्य से हम सब परिचित हैं। वर्णों की गणना के आधार पर गायत्री (२४ वर्ण), अनुष्टुप (३२ वर्ण), त्रिष्टुप् (४४ वर्ण) तथा जगती (४८ वर्ण) सदृश विभिन्न छन्दों की रचना हुई है। सर्वविदित है कि वैदिक मन्त्रों के सम्यक् उच्चारण के लिए छन्दोज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। उपनिषद् वाङ्मय में स्थान स्थान पर ज्योतिष के सभी अंगों यथा – संवत्सर, अहोरात्र, शुल्कपक्ष-कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, ऋतु आदि का सम्पूर्ण विवेचन मिलता है।

वैदिक अनुष्ठानों तथा यज्ञकर्मादि को विधिपूर्वक सम्पन्न करने के लिए यज्ञवेदी तथ अग्नि के आहवान का महत्त्व अत्यधिक है। ऋग्वेद तथा तैत्तिरीय संहिता में अग्नि को त्रिषधस्य कहा गया है।[7] इसी प्रकार अग्नि के विभिन्न आकारों तथा उसी के अनुसार यज्ञवेदी के आकार का भी निर्देश मिलता है। स्पष्ट है कि यज्ञवेदियों के निर्माता को रेखागणित का ज्ञान होना आवश्यक था। उपनिषदों में यद्यपि रेखागणित सम्बन्धी विषयवस्तु का प्रत्यक्ष प्रतिपादन उपलब्ध नहीं होता किन्तु कठोपनिषद् में नचिकेता द्वारा यम से स्वर्गप्राप्ति की साधनभूत अग्नि का ज्ञानरूपी द्वितीय वर्ष मांगने के प्रेसंग में उसे यज्ञवेदी के निर्माण की विधि ईंटों का आकार वाले संख्या आदि के विषय में विस्तार से वर्णन करते हैं –

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्व यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः॥[8]

स्पष्ट है कि उपनिषदों में अध्यात्म विद्या के साथ-साथ वैदिक कर्म के अनुष्ठान को भी महत्त्व प्रदान किया गया है। इन कर्मों की आधारभूत अग्नि के अनुष्ठान को भी महत्त्व प्रदान किया गया है। इन कर्मों की आधारभूत अग्नि के आश्रयस्थल अर्थात् यज्ञकुण्ड के निर्माण के लिए भी गणितशास्त्र की उपादेयता अत्यधिक है। उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट होता है कि उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान तथा अध्यात्म का ज्ञान प्रदान करने वाले ऋषिगण गणितशास्त्र से भी अनभिज्ञ नहीं थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रतिपाद्य की दृष्टि से उपनिषद ग्रंथो तथा वेदों में अत्यधिक अंतर आ चूका था। वैदिक कर्मकाण्ड के स्तर से ऊपर उठकर, औपनिषदिक ऋषिगण अध्यात्म तथा योग आदि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करके, इस संसार तथा जीवन के विषय में विचार - मन्थन करने लगे थे। अतः उपनिषदों के प्रतिपाद्य के दृष्टिकोण से लौकिक विषयो की आवश्यकता न के बराबर थी। फिर भी अध्यात्म तथा ब्रह्मज्ञान की सिद्धि के लिए आवश्यकतानुसार जहाँ - जहाँ लौकिक विद्याएं अपेक्षित थी वहाँ - वहाँ उनका उल्लेख मिलता है। अतएव उपनिषद् ग्रन्थों में प्रतिपादित उपदेशपरक प्रकृति को ध्यान में रखकर ही गणितशास्त्र सदृश लौकिक विद्या तथा उपनिषदों के सम्बद्ध का अध्ययन वाञ्छित है।

सन्दर्भ सूची

[1.]तैत्तिरीयोपनिषद् – भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाक् [2.]कठोपनिषद् – १.३.१७ [3.]वेदाङ्ग ज्योतिष – (याजुष) ४
[4.]ईशावास्योपनिषद् – श्रुतिमन्त्र [5.]छन्दोग्योपनिषद् – ७.१.२
[6.]मुण्डकोपनिषद् – १.१.४ [7.]अग्ने... त्रिषधस्य। ऋग्वेद – ५.४.८ [8.]कठोपनिषद् – १.१.१५

वैदिक धर्म का स्वरूप

डॉ. अजित कुमार
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग

वैदिक वाङ्मय में लोक-जीवन के मंगलमय सत्कर्म के प्रेरक के रूप में धर्म भावना की मूलत: अभिव्यक्ति हुई है। इसलिए देश काल की सीमा से बहुत ऊपर उठकर वैदिक धर्म-भावना विश्व के समस्त धर्मों से समन्वय करने में सर्वदा समर्थ है। धर्म को राजनीति से मिलाकर इतनी सर्वव्यापिनी महत्ता दी गयी है कि न्याय और प्रशासन की आदर्शमयी पूर्णत: अपने आप यहाँ सहज सुलभ हो गयी है। लोकहित साधक कर्म को धर्म शब्द से अभिहित किया गया है इसलिए विश्व जीवन की प्रतिष्ठा का आधार धर्म ही है। पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का आधार भी धर्म को ही माना गया है। सर्वोत्तम सद्गुणों की पूर्णता और लोकहित साधकता को दृष्टि में रखकर ही ऋषि ने कहा है कि धर्म समस्त संसार की प्रतिष्ठा है, संसार में धर्मशील के पास समस्त प्रजाएँ आती हैं। धर्मात्मा प्राणी धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म में सबकुछ प्रतिष्ठित है, इसलिए मनीषीजन धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।[1]

विश्व को धारण करने वाली धर्म भावना को वास्तव में वैदिक ऋषियों ने सत्य के प्रतीक के रूप में ही मान्यता दी है और कहा है कि "जो निश्चय रूप से धर्म है वही निर्भ्रांत रूप से सत्य है इसलिए सत्य बोलते हुए व्यक्ति के प्रति कहते हैं कि वह धर्मानुरूप बोल रहा है और धर्म के अनुकूल व्यक्ति के प्रति कहते हैं कि वह सत्य बोल रहा है।"[2] यही नहीं सत्य के साथ असत्य का प्रतिरोध अनवरत चलता रहता है, " सत्य यदि पुण्य है तो असत्य पाप है"। इस तथ्य से परिचित कराती हुई ऋषिवाणी है कि, "सत्य के साथ असत्य की वैसी ही स्पर्धा रहती है जिस प्रकार धर्म के साथ अधर्म की रहती है पर विजयश्री सत्य के साथ धर्म को ही मिलती है।" समझदार मनुष्य को यह जानना सरल है कि सत्य और असत्य दोनों वचन आपस में स्पर्धा रखते है। इन दोनों में जो सत्य है, वह अधिक सरल है, उसकी निश्चित रूप से इश्वर रक्षा करता है और जो झूठ है, उसका सर्वनाश करता है।"[3] इस प्रकार सत्य को अनन्त महिमा का वैदिक वाङ्मय में विशद उल्लेख मिलता है, क्योंकि नैतिक जीवन के आधार स्तम्भ ऋत् , सत्य , व्रत आदि सिद्धांतों का पूर्ण प्रकर्ष यहीं प्राप्त होता है। सत्य को मानव की अंतर्दृष्टि के रूप में ऋषि ने मान्यता दी है वैदिक ऋषि की दृष्टि में सत्य ही चक्षु है। अतः यदि इस समय आपस में विवाद करते हुए दो मनुष्य आये, एक कहने लगे कि मैनें देखा है, दूसरा बोले कि मैनें सुना है, तो उन दोनों में से जो कहेगा कि मैनें देखा है उसके प्रति हम श्रद्धा करेंगे क्योंकि वह आँख से निश्चय कर अपने कथन की पुष्टि करता है। वैदिक धर्म का प्रादुर्भाव सत्य से ही जान पड़ता है क्योंकि नीति एवं सदाचार का इसमें व्यापक सन्निवेश है।

इसके अनन्तर तपस्या की लोकोपयोगिता पर भी ऋषियों की दृष्टि गयी है और उन्होनें स्वीकार किया है कि वही तपस्वी है जो अपने आपको धर्म और राष्ट्र के लिए देता है।

पूँजीवादी दुष्प्रवृत्ति के अतिरेक को रोकने के लिए प्रजापति ने जो अपने पुत्रों को शिक्षा दी है आकाश में उसी का अनुवाद करती हुई मेघगर्जना ध्वनि द् द् द् के रूप में सुनायी पड़ती है जिससे उनको अनुभव होता है कि इन्द्रियों का दमन करो अर्थात् उनका सयंम करो , धर्म और देश के लिए धन का दान दो और प्राणियों पर दया करो। इस प्रकार वैदिक ऋचाएँ धर्म को मंगलमय रूप में व्यक्त करती हैं।

देश के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए परिश्रम को सर्वथा करणीय धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है जो श्रम से पूरा श्रान्त नहीं होता है उसके पास लक्ष्मी नहीं जाती है। श्रेष्ठ मनुष्य भी आलसी बनकर बैठा हुआ श्रीहीन हो जाता है। परम ऐश्वर्यवान परमात्मा चलने वाले पुरुषार्थी के ही मित्र हैं, हे रोहित, ऐसा मैनें सुना है बैठे हुए का ऐश्वर्य बैठ जाता है, उठकर खड़े हुए का खड़ा हो जाता है, पैरों को फ़ैलाकर, पड़े हुए का सो जाता है और चलने वाले पुरुषार्थी का ऐश्वर्य अनुगामी बना रहता है।

मनुष्य में विनय और अहंकार की स्पर्धा भी निरंतर चलती रहती है। अहंकार की अंतिम सीमा पर पहुंचकर मनुष्य अपने को ही सब कुछ समझने लगता है और यज् आदि कर्मों का विरोधी बन जाता है। वह सोचने लगता है कि हम अग्नि में हवन क्यों करें, अपने मुख में हवन करते हुए शरीर पोषणमात्र में स्वेछाचारिता बढ़ जाती है। प्रजापति के पुत्र असुरों को अभिमान के कारण ही अनादर प्राप्त हुआ, इसलिए अत्यन्त अभिमान शास्त्रीय दृष्टि से वर्जित है क्योंकि अनादर का यह मुख है।
मनुष्य ऋणी के रूप में ही अविर्भूत होता है। जन्मदिन से ही वह देवता, ऋषि, पितृ और मनुष्यों का ऋणी होता है। यज्ञ करने से देवताओं के ऋण से मुक्ति मिलती है। ज्ञान के मन्दिर में पहुँचकर जब वह समस्त विद्याओं का अध्ययन करता है तो वह ऋषिऋण से मुक्त होता है। जब वह पुत्र, पुत्री उत्पन्न करने की इच्छा से तथाविधि सन्तान उत्पन्न करता है तो उससे पितरों का ऋण निवृत्त होता है | घर में आप्त अतिथि का जो सत्कार करता है उससे मनुष्यों का ऋण निवृत्त होता है। जब मनुष्य यज्ञ, स्वाध्याय , प्रजोत्पत्ति और अतिथि सेवा का करणीय कर्म पूरा कर लेता है तब वह सम्पूर्ण कर्मों का कर्ता बन जाता है और उसके विषय में कहा जाता है कि उसे सब कुछ प्राप्त हुआ और उसने सब कुछ जीत लिया।

मनुष्य के जीवन का क्षण-क्षण में नाश करने वाले वर्ष को ही शतपथ ब्रह्मणग्रंथ में मृत्यु कहा है क्योंकि यह दिन और रात में मनुष्यों की आयु क्षीण करता है और वे मर जाते हैं इसलिए यह वर्ष ही मृत्यु है | इस काल प्रवाह के नियन्ता भगवान सूर्य हैं , और ये ही ब्रह्मा हैं , जो प्रतिदिन पूर्व से प्रकट होते हैं | इसलिये मृत्यु विजय की इच्छा रखने वाले ऋषि ने परम उपास्य मानकर यह प्रार्थना की है कि भगवान सूर्य हमें पूर्ण आयु दें | मृत्यु दूर भागे, नया जीवन पास आये, यह हम स्त्री पुरुषों की जीर्णावस्था तक रक्षा करे | हमारे प्रिय प्राण , आपके पुत्र यमराज को ना प्राप्त न प्राप्त होने पायें |
इस प्रकार समस्त वैदिक वाङ्मय में धर्म की व्यापकता नैतिक मूल्यों के विकास के साथ जुड़ी हुई है | कुछ विद्वानों ने वैदिक धर्म का प्रादुर्भाव ब्रह्मवर्त्त और ब्रह्मर्षि प्रदेश में स्वीकार किया है तथापि नीति एवं सदाचार का अत्यन्त प्रभावपूर्ण चित्रण इनका प्रमुख लक्ष्य रहा है |

सन्दर्भ सूची

[1.]धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मनिष्ठं प्रजा: उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापम् अपनुदति, धर्मे सर्वे प्रतिष्ठितम् तस्माद् धर्मं परमम् वदन्ति।(तै. आ. 10, 6.3)
[2.]यो वै स धर्म: सत्यं वै तत्।तस्मात् सत्यं वदन्तं। आहु: धर्मं वदति इति, धर्म वा वदन्तं सत्यं वदति इति। तद् ह एव एतत् उभयं भवति। (शत. 14.4.2.36)
[3.]सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय, सत् चासत् च वचसी पस्पृधाते तयो: यत् सत्यं यतरद् ऋजीय:, तद् इन् सोमो अवति हन्ति आसत्।(ऋ. 7.104.12)
[4.]सर्त्य वै चक्षु:। तस्माद् यद् इदानीं देवौ विवदमानौ एयाताम् अहम् अदश्रतम् , अहम् अश्रोषम् इति:। य: एवं ब्रूयात् अहम् अदर्शम् इति, तस्मै एव श्रद्धयाम् | तत् एव एतत् समर्धयति ||3||(शत. 1.3.4.27)
[5.]एतत् खलु वाव तप: इति आहु: यत् स्वं ददाति (धर्माय च राष्ट्राय((तै. सं. 6.1.6)
[6.]तद् पतद् एव एषा देवी वाग् अनुवदति, स्तनयित्नु: द द द इति। तद् एतत् त्रयं शिक्षद् दमं दानं दयाम् इति ||3|| (शत.14.8.2.4)
[7.]न अनाश्रान्ताय श्री: अस्तीति रोहित ! शुश्रुम्। पापो नृषद्द वरो जन: , इन्द्र: इत् चरत: सखा ||3|| आस्ते भग: आसीनस्य उध्र्वं तिष्ठति तिष्ठत:। शेते निपद्यमानस्य चरति चरतो भग: ||5||(ऐ. ब्रा. 33.3)
[8.] ते उभये प्रजापत्या: पस्पृधिरे। तत: असुरा: अतिमानेन एव कस्मिन् नु वयं जुहूयाम इति स्वेषु आस्येषु जुहूत: चेरू:। ते अतिमानेन एव पराबभुवु:। तस्मात् न अहिमन्येत। पराभवस्य हि एतत् मुखं, यद् अतिमान:।
[9.] ऋणं ह वै जायते, यो अस्ति। स जायमान: एव देवेभ्य: ऋषिभ्य: पितृभ्यो: मनुष्येभ्य: ||1|| (शत. 1.7.2.1)
[10.] स यद् एव यजेत् तेन देवेभ्य: ऋणं जायते (अपजायते निवर्तते(। (शत. 1.7.2.2)
[11.]तेन ऋषिभ्य: ऋणं जायते।(शत.1.7.2.3)
[12.] अथ् यद् एव प्रजाम् इच्छेत तेन पितृभ्य: ऋणं जायते।(शत. 1.7.2.4)
[13.] स य: एतानि सर्वाणि करोति, स कृतकर्मा, तस्य सर्वम् आप्तं , सर्वं जितम् ||6||(शत. 10, 4.3.1)
[14.] एष वै मृत्यू: यत् संवत्सर: ||1||(शत. 10, 4.3.1)
[15.] असौ वै आदित्यो। (नि. 7.26) [16.] ब्रह्मा, य: अहरह: पुरस्तात् जायते ||1||(शत. 7.4.1.14) विवस्वानृ अमृतत्वे दधातु परा + एतु मृत्यू: अमृतं न: ऐतु। इमान् रक्षतु पुरूषान् आजरिम्णो, मा उ षु एषाम् असतो यमं गु: ||2||(अथर्व.18,3.62)

सिद्धान्तपदार्थ

डॉ. सुशीला महरिया
सहायक आचार्या, संस्कृत विभाग

साधारण बोल-चाल में किसी बात या विषय के तत्वार्थ या सारांश को भी सिद्धांत कह दिया जाता है। कला, विज्ञान, शास्त्र आदि के सम्बन्ध में ऐसा कोई मत या विचारों का समूह जो किसी विद्वान द्वारा प्रतिपादित या स्थापित हो और जिसे अधिकांश लोग स्वीकार कर लेते हो 'सिद्धान्त' कहलाता है। जैसे कि विज्ञान के क्षेत्र में डार्विन ने विकासवाद का मत रखा और इसे सभी विद्वानों ने स्वीकृति दे दी तो वह ही मत 'डार्विन सिद्धांत' या 'विकासवाद का सिद्धांत' कहलाया। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में भी सुविचारित विचारधारा जिसका प्रचलन किसी विशिष्ट वर्ग या सम्प्रदाय में प्रायः सर्वमान्य होता है, 'सिद्धान्त' कहलाता है।

विभिन्न कोशग्रन्थों में 'सिद्धान्त' शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ उपलब्ध होते हैं- न्यायकोश में कहा गया है - शास्त्र या प्रमाण के आधारभूत अभिमत अर्थ की स्थापना सिद्धान्त है।[1] अमरकोश में सिद्धान्त के पर्याय के रूप में राद्धान्त को माना गया है।[2] आप्टेकोश के अनुसार सर्वसम्मत फल, किसी तर्क का प्रदर्शित उपसंहार, प्रमाणित तथ्य, मत तथा निर्णायक साक्ष्य के आधार पर अवलम्बित कोई माना हुआ मूलपाठ का ग्रन्थ ही सिद्धान्त है।[3] मानक हिंदी कोश में कहा गया - सिद्ध+अन्त, किसी विषय का वह अन्त अर्थात् अन्तिम निर्णय या निश्चय जो पूरी तरह से प्रमाणित हो चुका हो और इसलिए जिसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन के लिए अवकाश न रह गया हो। वह ही सिद्धान्त है।[4] निष्कर्षतः कोशग्रन्थों में सिद्धान्त को उपसंहार अथवा अन्तिम निर्णय के रूप में गृहीत किया गया है।

प्राचीन काल से ही सिद्धान्त विषयक चर्चा विविध स्थलों पर प्राप्त होती है। यथा - आयुर्वेद दर्शन के ग्रन्थ 'चरकसंहिता' में सिद्धान्त विषयक विचार प्राप्त होते हैं। आचार्य चरक के अनुसार जिसका परिक्षकों ने अनेक प्रकार से परिक्षण करके और हेतुओं द्वारा उन विषयों को सिद्ध कर जिस निर्णय की स्थापना की हो वही सिद्धान्त है।[5] आचार्य चरक ने सिद्धान्त के चार भेद बताये हैं - सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम।

ज्योतिषशास्त्र में भी सिद्धान्त विषयक विवेचन प्राप्त होता है। वहाँ पर ज्योतिष को आधार बनाकर लिखे गए ग्रन्थों को ही सिद्धान्त नाम दिया गया है। जैसे - सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, बृहस्पति-सिद्धान्त आदि। ज्योतिष ग्रन्थों में सिद्धान्त की जो परिभाषा दी गई है वह है - जिस ग्रन्थ में त्रुटि से लेकर प्रलय पर्यन्त समय की चर्चा है, जिसमें ग्रह-गति, प्रश्न और उनका उत्तर है, जिसमें (पाटी और बीज) दो प्रकार की गणित हो, जहाँ पर सृष्टि चर्चा, पृथ्वी, नक्षत्र आदि की कक्षा, ग्रहण और ग्रह योग की आलोचना और ज्या, धनु आदि यन्त्र और क्षेत्रफल

आदि की चर्चा हो वह ही सिद्धान्त है।[6] निष्कर्ष यह है कि ज्योतिष में सिद्धान्त से तात्पर्य उन ग्रन्थों से है जिसमें काल विषयक विचार किया जाता है।

मीमांसादर्शन में भी सिद्धान्त का ग्रहण किया गया है। मीमांसको ने अधिकरण के पाँच अवयव माने हैं - विषय, संशय, पूर्वपक्ष, उत्तर और संगति।[7] उत्तर को ही इन्होंने सिद्धान्त कहा है। मीमांसासूत्र के जिज्ञासा अधिकरण में यह विचार व्यक्त किया गया है कि विचारशास्त्र-मीमांसाशास्त्र का आरम्भ होना चाहिए या नहीं। 'अथातो धर्मजिज्ञासा' यहां से ले कर 'अन्वाहार्येण च दर्शनात्' इत्यन्त जैमिनी द्वारा उक्त सूत्र को विचारशास्त्र या मीमांसाशास्त्र कहते हैं। पाँच अवयवों में विषय हैं - विचार करना। आरम्भ करना चाहिए या नहीं यह संशय है। मीमांसाशास्त्र का आरम्भ नहीं करना चाहिए यह है पूर्वपक्ष। मीमांसाशास्त्र का आरम्भ करना चाहिए यह उत्तरपक्ष है जिसको सिद्धान्त कहा गया है। अतः निर्णय या उत्तर को ही मीमांसको ने सिद्धान्त कहा है। आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिषशास्त्र तथा मीमांसा दर्शन में तो यद्यपि शब्दशः सिद्धान्त नामोल्लेख विवरण मिलता है ; परन्तु सभी दार्शनिक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। न्यायदर्शन में जो सिद्धान्त विषयक विवरण प्राप्त होता है उसमें सिद्धान्त को पदार्थ माना गया है, साथ में निःश्रेयस प्राप्ति का साधन माना गया है।

महर्षि गौतम ने 'दृष्टान्त' पदार्थ का लक्षण बताकर पृथक् प्रकरण द्वारा क्रम प्राप्त सिद्धान्त पदार्थ का निरुपण किया है। सूत्रकार गौतम 'तन्त्राधिकरणाभ्युगपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः' इस सूत्र के द्वारा 'सिद्धान्त' पदार्थ का सामान्य लक्षण बताकर 'स चतुर्विधः...' इत्यादि सूत्र के द्वारा सिद्धान्त पदार्थ चार प्रकार का होता है यह व्यक्त करते हैं, परन्तु यहाँ पर इस प्रथम सूत्र को सिद्धान्त पदार्थ का लक्षणार्थ भी नहीं कहा जा सकता है और विभागार्थ भी नहीं कहा जा सकता। लक्षणार्थ इसलिए नहीं कहा जा सकता क्योंकि यहां प्रथम सूत्र में तन्त्र तथा अधिकरण (शब्दों) का ग्रहण है और तन्त्र (सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र) तथा अधिकरण तो सिद्धान्त के भेद हैं अतः लक्षण करने के लिए तो 'अभ्युपगमव्यवस्था सिद्धान्तः' इतना ही कहना चाहिए था। यदि उक्त सूत्र विभाग करने के लिए है तो यहां सर्वतन्त्र तथा प्रतितन्त्र का ग्रहण करना चाहिए प्रतिज्ञा आदि के समान, अर्थात् जैसे अवयवों का निर्देश करने के लिए केवल प्रतिज्ञा का ही ग्रहण नहीं किया गया है बल्कि प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन, निगमन प्रभृति पाँचो अवयवों का निर्देश हुआ है ; इसी प्रकार यहां पर भी विभागार्थ 'सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरभ्युपगम संस्थितिः' ऐसा कहना चाहिए और सिद्धान्त का लक्षण करने के लिए दूसरा सूत्र कहना चाहिए। निष्कर्ष यह है कि प्रथम या द्वितीय सूत्र व्यर्थ है, अतः दो उक्त सूत्र ऋषि गौतम द्वारा प्रणीत नहीं है। यह शंका वार्तिक से स्पष्ट है। दूसरी ओर भाष्यकार वात्स्यायन ने सिद्धान्त के सामान्य लक्षण को न पढकर ही 'अथ सिद्धान्तः....' इस भाष्य में तात्पर्य कहा है ; इस प्रकार के तात्पर्यटीकाकार के कथन के अनुसार 'कोई सिद्धान्त का सामान्य लक्षण का सूत्र अवश्य था जिसका उल्लेख नहीं हुआ है। ऐसा कुछ विद्वानों का मत है। प्रथमोक्त

शंका(प्रथम व द्वितीय सूत्र अनार्ष है) का समाधान वार्तिककार उद्योतकर करते हैं कि पहला सूत्र सिद्धान्त पदार्थ का सामान्य लक्षण सूत्र और द्वितीय सूत्र विभागार्थ है। सामान्य लक्षण के ज्ञान के बिना विषय में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, अतः महर्षि गौतम ने प्रथम सूत्र में सिद्धान्त का लक्षण कहा है और द्वितीय सूत्र में सिद्धान्त का विभाग। विभाग तो नियम के लिए होता है। द्वितीय सूत्र से यह नियम दिखलाया है कि अनेक प्रकार से भिन्न होने वाले सिद्धान्त का चार भेदों में संग्रह हो जाता है।

द्वितीय शंका से पूर्व ही भाष्यकार ने 'अथ सिद्धान्तः' ऐसा क्यों कहा है? इसका समाधान परिशुद्धि में उदयनाचार्य ने किया है कि भाष्यकार की यह रीति है कि वह स्वप्रतिमा से स्वतंत्र रूप से सूत्रार्थ का प्रतिपादन करता है। निष्कर्ष यह है कि प्रथम सूत्र 'तन्त्राः..' व द्वितीय सूत्र 'स चतु..' दोनों ही आर्ष है। महर्षि गौतम द्वारा ही प्रतिपादित है। प्रथम सूत्र 'तन्त्राः...' कैसे लक्षणार्थ होता है? कैसे उसके द्वारा सिद्धान्त का सामान्य लक्षण समझा जा सकता है? इसके उत्तर में उद्योतकर कहते हैं कि तन्त्र(शास्त्र) जिन अर्थों का अधिकरण है, उन अर्थों की स्वीकृति - यह सूत्र का अर्थ है। तन्त्र अधिकरण है जिन अर्थों का वे हैं तन्त्राधिकरण, उनकी स्वीकृति की स्थापना - 'ये ऐसे हैं' इस प्रकार का निश्चय (व्यवस्था) अथवा किसी वस्तु के किसी धर्म का नियम ही सिद्धान्त है। सूत्र में तन्त्र पद से शास्त्र और अधिकरण से आश्रय अभिप्रेत है। अतः तन्त्राधिकरण से विवक्षित अर्थ है, जो पदार्थ किसी शास्त्र से जाना जाता है और उस पदार्थ का स्वीकृत रूप ही अभ्युपगमसंस्थिति है। फलतः शास्त्र द्वारा निश्चित अर्थ ही सिद्धान्त है।

सिद्धान्त शब्द का अर्थ स्पष्ट करने हेतु भाष्यकार कहते हैं 'इदं' और 'इत्थम्भूतं' अर्थात् 'वह है' और 'ऐसा है' इस रूप में स्वीक्रियमाण अर्थ सिद्ध है और सिद्ध की स्थापना (संस्थितिः) सिद्धान्त है। 'संस्थितिः' से तात्पर्य है 'इत्थम्भाव की व्यवस्था' इत्थम्भाव अर्थात् उस अर्थ(पदार्थ) का विशेष धर्म। 'व्यवस्था' शब्द का तात्पर्य है नियम। निष्कर्ष यह है कि 'इदम्' शब्द से अर्थ की सामान्यतः स्वीकृति कही गई है। 'इत्थम्भूतं' शब्द से अर्थ की विशेष रूप में स्वीकृति कही गई है। अतः सामान्य, विशेष से युक्त अर्थ (पदार्थ) की स्थापना ही सिद्धान्त है। न्यायवार्त्तिककार उद्योतकर भी कहते हैं - 'सामान्यविशेषपदार्थाभ्यनुज्ञा सिद्धान्तः' इति। तात्पर्य यह है कि पदार्थ मात्र का ही सामान्य धर्म और विशेष धर्म होता है। जैसे शब्द का सामान्य धर्म इदन्त्व और शब्दत्व और विशेष धर्म नित्यत्व व अनित्यत्व। यथा किसी वादी का इदन्त्वरूप से शब्द का निश्चय करने के बाद वह शब्द 'इत्थम्भूत' अर्थात् नित्य वा अनित्य है ऐसा उसमें कोई नियत विशेष धर्म का निश्चय होने पर उसके पक्ष में शब्द उस रूप में ही सिद्ध है। जैसे शब्दनित्यत्ववादी मीमांसक सम्प्रदाय मत में शब्द नित्यत्व रूप में ही सिद्ध है। इसलिए वर्णात्मक शब्दों का नित्यत्व रूप विशेष धर्म का जो नियम अर्थात् उक्त रूप में स्वीकृत जो नित्यत्व रूप धर्म है वहीं मीमांसक सम्प्रदाय का सिद्धांत है। दूसरी ओर नैयायिको के लिए शब्द का अनित्यत्व रूप विशेष धर्म का जो नियम है वहीं सिद्धान्त है।

सिद्ध +अन्त = सिद्धान्त, यहां पर सिद्ध= 'यह है' और 'ऐसा है' इस रूप में स्वीकृत अर्थ है। अन्त = निश्चित धर्म। इसी तरह ज्ञान अर्थ में भी 'अन्त' शब्द का प्रयोग होने से उक्त रूप से सिद्ध पदार्थ के ज्ञान को भी सिद्धांत कहते हैं, पुनः भाष्यकार वात्स्यायन 'तन्त्राधिकरण...' इस गौतम सूत्र को स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'तन्त्रसंस्थितिः', 'अधिकरणसंस्थितिः' और 'अभ्युपगमसंस्थितिः' सिद्धान्त है। शेषोक्त 'संस्थितिः' शब्द का 'तन्त्र', 'अधिकरण' और 'अभ्युपगम्' शब्द के साथ सम्बन्ध होने से अर्थ भी तीन प्रकार से होता है उनमें प्रथमोक्त 'तन्त्रसंस्थितिः' की व्याख्या 'तन्त्रार्थसंस्थितिः' की गई है, तन्त्र शब्द का अर्थ शास्त्र और तन्त्रार्थसंस्थितिः शब्द का तात्पर्य है - शास्त्र प्रतिपादित शब्दों की संस्थितिः। 'अधिकरण संस्थितिः' का अर्थ समझना चाहिए कि अधिकरण के साथ अनुषक्त अर्थात् आनुषंगिक पदार्थों की संस्थितिः। शेषोक्त 'अभ्युपगमसंस्थिति' का अर्थ है प्रमाण के द्वारा अपरीक्षित परमत का स्वीकार करना। किसी विषय में वादी सम्मत धर्म विशेष को बिना विचार किए स्वीकार करके, उसके अन्य विशेष धर्म की परीक्षा करने पर उस स्थल पर अपरीक्षित धर्म की स्वीकृति 'अभ्युपगमसंस्थिति' है। इस विषय में टीकाकार वाचस्पति मिश्र का कथन है - 'व्याख्यानपूर्वकमेव विभागसूत्रं पठति' । अर्थात भाष्यकार ने 'तन्त्रसंस्थिति...' इत्यादि भाष्य सन्दर्भ के द्वारा पहले ही विभागसूत्र की व्याख्या करके 'स चतुर्विधः...' इस सूत्र का पाठ किया है, परन्तु यह तर्कसंगत नहीं है क्योंकि भाष्यकार वात्स्यायन ने 'तन्त्रसंस्थिति' इत्यादि सन्दर्भ से पूर्व सत्र 'तन्त्राधिकरण' की ही व्याख्या करके 'तन्त्रसंस्थिति', 'अधिकरणसंस्थिति' और 'अभ्युपगमसंस्थिति' इन सबका अन्यतमत्व ही सिद्धान्त का सामान्य लक्षण हैं, यह स्पष्ट किया है। वृतिकार विश्वनाथ भी कहते हैं कि भाष्य को विभाग सूत्र की व्याख्या मानने पर तो द्वितीय विभाग सूत्र व्यर्थ हो जाता है। भूषणकार भासर्वज्ञ ने स्वयं के द्वारा स्वीकृत अर्थ को ही सिद्धान्त कहा है। लेकिन उद्योतकर का कहना है कि जो अर्थ (पदार्थ) किसी शास्त्र के द्वारा बोधित नहीं है उसको स्वीकार करना सिद्धान्त नहीं है। वृतिकार विश्वनाथ ने भी 'तन्त्र शास्त्रं, तदेवाधिकरणं ज्ञापकतया यस्य' इस तरह से व्याख्या करके, 'तन्त्राधिकरण' शब्द का अर्थ करते हैं - शास्त्र बोधित पदार्थ। वस्तुतः 'तन्त्र' शब्द का 'शास्त्र' अर्थ ही प्रसिद्ध है। परन्तु वाचस्पति मिश्र, जयन्तभट्ट, वरदराज, उदयनाचार्य (लक्षण माला) तथा केशव मिश्र प्रभृति विद्वानों ने प्रथम सूत्र के 'तन्त्र' शब्द का अर्थ 'प्रमाण' किया है।

आचार्य वरदराज ने कहा है कि तत्तत् वादियों के द्वारा सिद्ध प्रमाणों से जो स्थापना की जाती है वह सिद्धान्त कहलाता है।[18] ईश्वर है ऐसा कुछ दार्शनिकों का मत है। द्वितीय पक्ष है ईश्वर नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रमाणों के द्वारा जिसे स्वीकार किया जाए वह सिद्धान्त है अन्य कई सिद्धान्तता नहीं होती है। पदार्थ का द्वैरूप्य असम्भव होने के कारण दोनों के ही प्रमाण्य की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः स्वयं वरदराज ने सिद्धान्त लक्षण में 'आभिमानिकसिद्धिभिः' पद का सन्निवेश किया है। जिसका तात्पर्य है कि तत्तत् वादियों का प्रमाणत्व रूप विवक्षित है। न कि तत्त्वतः प्रमाणमूलत्व। 'लक्षणमाला' ग्रन्थ में उदयनाचार्य ने

तथा 'तर्कभाषा' नामक ग्रंथ में केशव मिश्र ने कहा है कि जिस अर्थ (पदार्थ) को प्रमाणिक रूप से स्वीकार किया जाता है उस अर्थ को सिद्धान्त कहते हैं।[19] इस प्रकार स्पष्टहोता है कि जयन्तभट्ट, उदयनाचार्य, वरदराज प्रभृति आचार्यों ने तन्त्र का अर्थ प्रमाण ही किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि यद्यपि सिद्धान्त के विषय में विभिन्न मतों का प्रस्तुतिकरण किया गया है परन्तु सभी का सिद्धांत से तात्पर्य प्रमाण अथवा शास्त्र सिद्ध पदार्थ से हीहै जो सामान्य विशेष धर्म से विशिष्ट हो। जैसे कि भाष्यकार ने सिद्धान्त का सामान्य लक्षण देते हुए कहा है कि यह है, ऐसा है- इस प्रकार से स्वीकृत अर्थ सिद्धान्त है। वार्तिककार उद्योतकर व टीकाकार वाचस्पति मिश्र भी सामान्य, विशेष से युक्त अर्थ की स्थापना (अभ्यनुज्ञा) को सिद्धान्त कहते हैं। इन सभी का निष्कर्ष स्पष्ट करते हुए तात्पर्यपरिशुद्धि में उदयनाचार्य ने कहा है कि अर्थ(पदार्थ) और उसका अभ्युपगम ये दोनों ही गौणमुख्य भाव की विवक्षा अनुसार सिद्धान्त कहलाते हैं। अर्थात पदार्थ की स्वीकृति और स्वीकृत पदार्थ ये दोनों ही सिद्धान्त है। इसलिए सूत्र, भाष्य, तात्पर्यटीका और वार्तिक में परस्पर विरोध नहीं है। वृतिकार विश्वनाथ भी अपनी व्याख्या में त्रिसूत्रीनिबन्ध कहकर उदयनाचार्य की 'तात्पर्यपरिशुद्धि' का सम्बन्ध उद्धत करते हुए कहते हैं कि भाष्य, वार्तिक और टीका में परस्पर विरोध नहीं है।

सन्दर्भ सूची

[1].न्यायकोश,पृ०1020 [2].अमरकोश,पृ०24 [3].संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश, पृ०304-305 [4].मानक हिंदी कोश,(पंचमखण्ड),पृ०366 [5].सिद्धान्तो नाम स यः परिक्षकैर्बहुविधं परीक्ष्य हेतुभिश्च साधयित्वा स्थाप्यते निर्णयः।- चरकसंहिता,पृ०739 [6].यत्र त्रुट्यादिकालः प्रलयचरमकः खेचराणां प्रचारः प्रश्नाचैवोत्तराणि द्विविधगणितमध्युद्धवो भूतराशैः स्थानं भूभग्रहादे ग्रहण खगयुति ज्या धनुषकर्मयन्त्रक्षेत्रायं गद्यते सद्गणकं गणवरेरेषं सिद्धान्तः उक्तः।- 1.17, सिद्धान्त दर्पण, भाग1,(अनु.)-अरूण कुमार उपाध्याय, पृ०5 [7].विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। प्रयोजनं संगतिश्च शास्त्रेऽधिकरणं विदुः।। - शास्त्र दीपिका, पृ० - 15

संस्कृत व फारसी भाषा की एकात्मकता

नेहा कुमारी
स्नातकोत्तर, द्वितीय वर्ष

फारसी भाषा भारत-यूरोपीय भाषा परिवार की भारत ईरानी प्रजाति से संबंधित है। ईरान में बोली जाने वाली 'फारसी भाषा' इस्लामी शासको के आक्रमण के साथ ही भारत मे प्रवेश कर गयी। फारम का पुराना नाम ईरान है। 'फारमी' फारस देश से आने के कारण फारसी कहलायी। जिस प्रकार संस्कृत से हिन्दी का विकास हुआ है, उसी प्रकार प्राचीन फारमी से आधुनिक फारमी वियोगात्मक हो गई है। वर्तमान में यह ईरान की राष्ट्रभाषा है।

ईरान शब्द अवेस्ता भाषा में 'एरिया'(Airya) प्राचीन फारसी (फारसी-ए-बास्तान) में 'अरिया'(Ariya) तथा संस्कृत में 'आर्या' के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। अवेस्ता भाषा में इस शब्द का प्रयोग ईरानी क़ौम तथा शुद्ध कुलीन एवं अभिजात दोनों के लिए हुआ है। भारत में फारसी सुल्तानों, बादशाहों, राजाओ एवं नवाबो की सरकारी, दरबार व दैनिक कार्यो की भाषा रही जिसके परिणाम स्वरूप जीवन के हर क्षेत्र मे फारसी भाषा मे भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया। भाषा-वैज्ञानिक की दृष्टि से फारसी-संस्कृत भाषा के बहुत समीप है। फारसी और संस्कृत के कई शब्द आपस मे मिलते-जुलते हैं। यथा:-

संस्कृत	**फारसी**	**अंग्रेज़ी**
पितृ	पिदर	Father
भ्रातृ	बिरादर	Brother
सप्त	हफ्त	Seven
चक्षु	चश्य	Eyes

भारोपीय परिवार की भाषाओं की तुलना से यह स्पष्ट होता हैं कि यह परिवार प्रारम्भ से ही दो भागों मे विभक्त होता है- केन्टुम और शतम्(सतम्) वर्ग। केन्टुम वर्ग मे अधिकांश यूरोपीय भाषाएं आती हैं और शतम् वर्ग मे मुख्य रूप से संस्कृत और अवेस्ता भाषाएं। संस्कृत और अवेस्ता मे इतनी अधिक समानता हैं कि इनको एक पृथक् शाखा माना गया है। इसको भारत-ईरानी, या हिन्द-ईरानी शाखा कहते हैं। ईरान शब्द 'आर्याणाम्' का अपभ्रंश रूप है। सर्वाधिक प्राचीनतम रूप वैदिक संस्कृत मे मिलता है। ईरान की प्राचीन भाषा 'अवेस्ता' है। "अवेस्ता" संस्कृत 'अवस्था' का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है- "व्यवस्थित, परिनिष्ठित रूप। ईरान या फारमी का प्राचीन नाम 'पहलवी' था। पहलवी से पहले 'ज़ेन्द' थी। ज़ेन्द और प्राचीन वैदिक भाषा समान ही है। अवेस्ता की टीका को ज़ेन्द कहते हैं, जो पहलवी भाषा में है। पारसियों के धर्मग्रंथो को भी "अवेस्ता" कहते हैं और उनकी भाषा को भी। जिस प्रकार संस्कृत मे 'छंदस्' के दोनों अर्थ हैं - (१)वेद, (२)वैदिक भाषा , उसी प्रकार "अवेस्ता" धर्मग्रंथ और धर्मग्रंथो की भाषा दोनों के लिए है। कुछ भाषा-वैज्ञानिकों के अनुसार 'छंद' से ही 'ज़ेन्द'

शब्द बना है। इसकी वर्णमाला भी संस्कृत जैसी है। अग्नि पूजा आदि कार्य भी फारमी और आर्यों के समान ही है। पहलवी लोगो को 'मनुस्मृति' में "व्रात्य क्षत्रिय" कहा गया है। फारसी(ज़ेन्द) का अन्य भाषाओं से ही नहीं अपितु वर्तमान फारसी और संस्कृत मे भी समानता है। यथा:-

संस्कृत	**फ़ारसी**	**अर्थ**
हस्त	दस्त	हाथ
शत	सद	सौ
हर	जर	पीला, सुनहरा रंग
अस्ति	अस्त	हैं
रोचन	रोशन	चमकीला
दुहितृ	दुख्तर	बेटी/पुत्री
शर्करा	शकर	चीनी

फ़ारसी और संस्कृत में अमीर खुसरो के प्रयास से आदान-प्रदान भी हुआ। 'जिया नक्शवी' का "तूतीनामा" संस्कृत का ही रूपांतर था। फिरोज़शाह तुगलग के शासन काल मे भी संस्कृत की रचनाओं का फारसी मे अनुवाद हुआ। 15वी. शताब्दी मे कश्मीर के शासक जैन-उल ने कई साहित्यों का संस्कृत से फारसी मे अनुवाद करवाया। धीरे-धीरे राजभाषा का स्थान संस्कृत की जगह फारसी ने ले लिया। अमीर-खुसरो ने फ़ारसी की एक नयी शैली विकसित की जिसे 'सबाकी हिन्दी' या 'भारतीय शैली' कहा गया। इन्होंने संस्कृत के छन्दों एवं विशिष्ट विषयों पर 11 कृतियों की रचना की जिनमें से लैला और मजनू, शिरीन-खुसरो, आइन-ए-सिकंदरी आदि पाँच सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। इसके अलावा 'मिन्हा सिराज़' आदि फारसी के इतिहासकार भी हुए। इस युग के सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार 'जियाउद्दीन' हुए थे। 21वी. शताब्दी के भारतीय समाज में हमे अनेक भाषाओं का प्रयोग देखने को मिलता हैं, परंतु हिन्दी भाषा पर सर्वाधिक प्रभाव "फ़ारसी" भाषा का मिलता है, जिससे सभी भारतीय भाषाएँ प्रभावित हुई हैं।

1526 ईस्वी से बाद के समय में जब भारत में मुग़ल काल स्थापित हुआ उसी समय में भारत के अनेक भागों जैसे-गुजरात, पंजाब, अवध, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र, कश्मीर, असम तथा दक्षिण-भारत आदि में बादशाहों के दरबार मे सरकारी कार्यो की भाषा "फ़ारसी" ही रही। इसके परिणामस्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में फ़ारसी भाषा ने भारतीय भाषाओं में "अरबी भाषा" के शब्दों को भी स्थान मिलने लगा। फ़ारसी भाषा का हमारी भारतीय संस्कृति, कलाओं, और भाषाओं पर अत्यधिक गहरी और अमिट छाप छोडी है। भारतीय भाषाओं के व्याकरण, धार्मिक, शब्दकोशों, मुहावरों, कविताओ, कहावतों इत्यादि पर अत्यधिक प्रभाव देखा जाता है। भारतीय भाषाओं मे फ़ारसी भाषा के वाक्यांशों, मुहावरों, कविता, तथा, लिपिगत शब्दों को सहर्ष स्वीकार किया गया है, जो हमे फ़ारसी भाषा का भारतीय भाषाओं के साथ बने हुए मधुर संबंध का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित व्यवहार की व्यवस्था

आरुषि निगम
स्नातकोत्तर, द्वितीय वर्ष

व्यवहार का अर्थ:- व्यवहार शब्द सूत्रों तथा स्मृतियों द्वारा कई अर्थों में वर्णित हुआ है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रयुक्त व्यवहार शब्द का अर्थ मुकदमा तथा न्यायालयों में गए हुए विवाद एवं न्याय संबंधी विधि से है। यह तात्पर्य बहुत प्राचीन है, अशोक के दिल्ली टोपरा स्तंभ के प्रथम अभिलेख में "वियोहालसमता"(व्यवहार समता) तथा खारवेल के हथिगुम्फा शिलालेख में व्यवहार विधि शब्द आए हैं। कतिपय स्मृतियों एवं टीकाकारों ने व्यवहार शब्द की परिभाषा की है। कात्यायन ने दो परिभाषाएं की हैं- (क) परंपरा के आधार पर व (ख) व्युत्पत्ति के आधार पर जो विधि की ओर प्रमुख रूप से संकेत करती है- वि उपसर्ग बहुत के अर्थ में, अव का संदेह तथा हार का हटाने के अर्थ में। अर्थात् व्यवहार नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह बहुत से संदेहों का हरण या दूर करता है- " **वि सन्देहे हरणं हार उच्यते। नानासंदेहहरणाद् व्यवहार इति स्मृतः।"** महाभारत के उद्योगपर्व एवं आपस्तम्भधर्मसुत्र में इसका अर्थ लेन देन है। व्यवहार पद का एक अन्य अर्थ झगड़ा या मुकदमा भी है जिसका संकेत हमें शान्तिपर्व, मनुस्मृति, याज्ञल्क्य एवं नारद स्मृति, विष्णुधर्मसूत्र एवं शुक्रनीतिसार में मिलता है- **व्यवहारान् दिदृक्षस् तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः। मन्त्रज्ञैर मन्त्रिभिश् चैव वनीतः प्रविशेत् सभम्।।** इसका एक अन्य अर्थ है लेन देन में प्रविष्ट होने से संबंधित न्याय्य (कानूनी) सामर्थ्य। एक अर्थ यह भी प्राप्त होता है- किसी विषय को तय करने का साधन। यथा- **तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राणि अंशांनि।** कौटिल्य अर्थशास्त्र में न्यायालय शब्द के लिए धर्मास्थीय शब्द का प्रयोग हुआ है। नारद एवं मनुस्मृति में राजा के न्यायालय को धर्मासन या धर्मस्थान कहा गया है। कात्यायन ने धर्माधिकरण के अनुसार- **धर्मशास्त्रविचारेण मूलसारविवेचनम्। यत्राधिक्रियते स्थाने धर्माधिकरणं हि तत्।।**

भिन्न भिन्न ग्रंथों में (नारद स्मृति, बृहस्पति, कात्यायन स्मृति, अग्निपुराण) व्यवहार के अंगों के विषय में अनेक प्रकार से निर्देश हुए हैं। जैसे:-

1. चतुष्पाद - चार पाद (धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन) याज्ञवल्क्यानुसार - अभियोग, उत्तर, क्रिया एवं निर्णय व कात्यायनानुसार - अभियोग, उत्तर,प्रत्यकुलित व निर्णय।
2. चतु: स्थान- चार आधार वाला (सत्य, साक्षी, पुस्तकरण एवं राजशासन)
3. चतुस्साधन- चार साधन वाला (साम, दान, भेद, दण्ड)
4. चतुर्हित- चारों वर्णाश्रमों का हित करने वाला
5. चतुष्करी- चार फल को उत्पन्न करने वाला- धर्म, लाभ, ख्याति एवं प्रजा के लिए प्रेम या आदर भाव।

6. अष्टांग- आठ अंग यथा - राजा, उच्च न्यायधीश, सभ्य न्यायधीश, न्याय शास्त्र, शणक, लिपिक, अग्नि एवं जल।

7. त्रियोनि - तीन स्त्रोत या प्रेरणाएं हों- काम, क्रोध, लोभ।

8. द्विगति - दो गतियां होती हैं अर्थात् निर्णय सत्य या झूठ पर आधारित हो सकता है।

9. द्विपाद - दो पैर हैं। धनमूल(सिविल/ माल) तथा हिंसामूल (क्रिमिनल या फौजदारी)

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार व्यवहार चतुष्पाद माना गया है-

धर्माश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्। विवादार्थचतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः।।

अत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु। चरित्रं सङ्ग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम्।।

अर्थात् धर्म, व्यवहार, चरित्र और राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक साधन होने के कारण राष्ट्र के चार पैर माने जाते हैं और इन्हीं से राज्य स्थिर होता है। इनमें भी धर्म से व्यवहार, व्यवहार से चरित्र, और चरित्र की अपेक्षा राजाज्ञा श्रेष्ठ है। धर्म सच्चाई में, व्यवहार साक्षियों में, चरित्र समाज के जीवन में और राजाज्ञा राजकीय शासन में स्थित रहती है।

1. धर्म - धर्म के अनुसार निर्णय का तात्पर्य यह है कि अपराधी अपना दोष मान ले और वादी को उसका धन मिल जाए या उसकी मांग की पूर्ति हो जाए। इसमें मुकदमा आगे नहीं चलता, अर्थात् साक्ष्य, लेख, प्रमाण आदि की क्रियाएं नहीं होती। इसी प्रकार दिव्य (आर्डीएल) द्वारा प्रमाण एकत्र करके निर्णय देना भी धर्मपाद माना जाता है। दिव्य को सत्य भी कहा जाता है।

2. व्यवहार - न्यायालयों में सक्षियों द्वारा मुकदमा लड़ा जाता है, तब उसे व्यवहार कहा जाता है। जब प्रतिवादी सीधे प्रकार से उत्तर न देने का अपराधी सिद्ध होता है अथवा उसके उत्तर दोषपूर्ण होने से स्वीकृत नहीं होते और निर्णय उसके विपक्ष में जाता है तब भी ऐसा निर्णय व्यवहार द्वारा ही किया गया माना जाता है।

3. चरित्र - चरित्र से तात्पर्य है देश, ग्राम या कुल की परंपरा या रूढ़ि। चरित्र का अर्थ अनुमान (अधिकार एवं पूर्वधारणा) भी है। रूढ़ियों एवं परंपराओं के आधार पर भी निर्णय दिया जाता था और ऐसी स्थिति में स्मृतिसम्मत नियमों का विचार नहीं होता था। "चरित्रं पुस्त्करणे" तथा "चरित्रं तु स्वीकरणे" का तात्पर्य ऐसे प्रयोग या रूढ़ियां जो राजा द्वारा लिखित कर ली गयी हैं एवं न्यायालयों द्वारा निर्णय के लिए प्रमाणिक मान ली गई हों।

4. राजशासन- राजाज्ञा वह है जो राजा द्वारा दी जाती है, किन्तु वह स्मृतिविरुद्ध नहीं होती और न स्थानीय रूढ़ियों के विरुद्ध होती है। वह राजा की मेधा का परिचायक होती है और तभी कार्यान्वित होती है जब दोनों पक्ष प्रबल हों और उनके पक्ष में जो प्रमाण हों वे शास्त्रीय एवं अकाट्य हों।

व्यवहार पद का अर्थ है झगड़े, विवाद, मुकदमे का विषय। कौटिल्य एवं नारद स्मृति ने व्यवहार पद के स्थान पर विवादपद का प्रयोग किया है। निष्पक्ष न्याय करना एवं अपराधी

को दण्ड देना राजा के प्रमुख कार्यों में था। राजा न्याय का स्रोत माना जाता था। कौटिल्य ने न्यायालय के लिए धर्मस्थीय पद का प्रयोग किया है। न्यायालयों के चार प्रकार माने गए हैं

1. प्रतिष्ठित - जो किसी पुर या ग्राम में प्रतिष्ठित हो।
2. अप्रतिष्ठित - जो एक स्थान पर प्रतिष्ठित न हो। नाना ग्रामों में काल-काल पर अवस्थित हो सके।
3. मुद्रित- जो राजा द्वारा नियुक्त हो और जो राजा की मुहर प्रयोग में ला सके।
4. शासित/शास्त्रित - वह न्यायालय जहां का न्याय स्वयं राजा करे।

कौटिल्य की प्रशासनिक अवधारणानुसार दो राज्यों की सीमा (जनपद संधि) पर निम्न प्रकार से न्यायालयों की स्थापना होनी चाहिए।

1. स्थानीय धर्मस्थीय - 800 ग्रामों का केंद्र
2. द्रोणमुख - 400 ग्रामों का केंद्र
3. खाईटिक - 200 ग्रामों का केंद्र
4. संग्रहण - 10 ग्रामों का केंद्र
5. ग्राम - 100-500 परिवारों का एक।

कौटिल्य के अनुसार इन सभी न्यायालयों में 3-3 न्यायाधीश(धर्मस्थ) एक साथ रहकर विवादों का समाधान कर सकते हैं-

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्याजनपदसन्धिसंग्रहणद्रोणमुखस्थानीयेषुव्यवहारिकानर्यान्कुयुः।

मंत्रीपरिषद के सदस्यों की संख्या के विषय में बहुत प्राचीन काल से ही मतभेद रहा हैं। कौटिल्य एवं कामन्दक के अनुसार मंत्रीपरिषद में 12 अमात्य होते हैं। कौटिल्य की सम्मति है कि संख्या का निर्धारण यथासामर्थ्य होना चाहिए- **कार्यसामर्थ्यादिहिपुरुषसामर्थ्यकल्पयते**। कौटिल्य के अनुसार 6 प्रकार के व्यवहारों को न्यायविरुद्ध घोषित किया गया है:-

(1)तिरोहित-जो कार्य या कृतियाँ छिपकर की गई हो अथवा व्यवहार में कुछ छुपाया गया या अधिकृत पुरुषविशेष की अनुपलब्धि या अनुपस्तिथि में किया गया हो वह व्यवहार तिरोहितव्यवहार कहलाता है। अतः कौटिल्य के अनुसार तिरोहितव्यवहार न्यायसम्मत नहीं माने जाते। तिरोहितव्यवहार 5 प्रकार के होते हैं।

1) स्वामितिरोहित- जिस वस्तु का व्यवहार किया जा रहा है उस वस्तु का वास्तविक स्वामि उपस्थित न हो, अथवा उस अभुक वस्तु पर जिसका स्वामित्व उसके जाने बिना या बिना अनुमति के व्यवहार किया जाए तो वह स्वामितिरोहितव्यवहार कहलाता है।
2) देशतिरोहित- कौटिल्य के अनुसार देश का अर्थ साक्ष्य एवं साक्षी है।
   दिश् उच्चारणे धातु से निष्पन्न **दिशन्ति उपदिशन्ति स्वोप्लब्धमर्थं प्राङ्विबाकाय ज्ञापयन्ति इतिदेशाः साक्षिणः**।

कौटिल्य का मानना है कि प्रत्येक व्यवहार में कम से कम 3 साक्षियाँ होनी चाहिए और यदि साक्ष्यों को छुपाया जाए तो इसप्रकार का व्यवहार देशतिरोहित कहलाता है।

3) कालतिरोहित- व्यवहार में यदि किसी भी प्रकार से काल को छुपाया जाए तो वह कालतिरोहितव्यवहार कहलाते हैं।
4) क्रियातिरोहित- कौटिल्य के अनुसार हर व्यवहार का पद्निबंध, प्रमाणीकरण एवं स्पष्ट रूप से लेखनीकरण होना चाहिए। यदि इसप्रकार की क्रिया-व्यवहारों को न लिखा गया हो अथवा लिखे हुए को छुपाया गया हो तो वह क्रियातिरोहितव्यवहार कहलाता है।
5) द्रव्यतिरोहित- कर्ता एवं कारिता के मध्य जिस वस्तु, द्रव्य के संबंध में व्यवहार हो रहा है, यदि वह द्रव्य ही अनुपलब्ध हो तो ऐसे व्यवहार द्रव्यतिरोहित कहलाते हैं।

(2)अन्तागारकृत- कौटिल्य के अनुसार कर्ता/ कारिता एवं साक्षी के द्वारा सभी प्रकार के व्यवहार न्यायालय में ही किए जाने चाहिए। न्यायालय के अतिरिक्त यदि कही भी घर आदि में इसप्रकार व्यवहार किए जाते हैं तो वह अन्तागारकृतव्यवहार कहलाते हैं। कौटिल्य के मतानुसार अन्तागार में किए सभी व्यवहार अवैध माने जाते हैं।

(3)नक्तकृत- रात्रिमेंकिएगएव्यवहारकौटिल्यनेप्रतिषिद्धमानेहैं।

(4)अरण्यकृत- वनजंगलोमेंकिएगएकृतकौटिल्यकालीनसमाजमेंअवैधमानेगएथे।

(5)उपधिकृत- छलअथवाधोखेपूर्णकार्योकीप्रतिषिध्दमानागयाहैं।

(6)उपहवरकृत- गोपनीय रूप से कर्मो का उपहवरकृतव्यवहार कहते हैं। इन व्यवहारों को भी कौटिल्य ने अवैध घोषित किया है-**तिरोहितान्तरगारनक्तारणयोपध्युपहवरकृतांश्च व्यवहारन्प्रतिषेधयेयुः।**

कौटिल्य ने आगे कहा है की ऐसा करने वालो तथा कराने वालो को प्रथम साहस दण्ड दिया जाए। इसप्रकार के नियम विरुद्ध कार्यो को सुनकर गवाही देनेवालो को आधा साहस दण्ड और इन व्यवहारों में श्रद्धा-सहानुभूति अर्थात् इन अवैधव्यवहारों में जो कोई भी व्यक्ति सक्रिय रूप से भागीदार न हो परन्तु इस व्यवहारनीति का अथवा अभियुक्त का समर्थनकर्ता हो, या किसी भी प्रकार का बाहय समर्थन देता हैं तो उसको अर्थदण्ड/ उस व्यक्ति के द्वारा निवेशित अर्थ को जब्त किया जाए- **कर्तुः कारयितुश्च पूर्वसाहसदण्डः। श्रोतृणामेकैंकप्रत्यर्धदण्डाः। श्रद्धेयानांतूद्रव्यव्यपनयः।**

याज्ञवल्क्य स्मृति में स्त्रीधन के प्रकार का वर्णन

रिया भारद्वाज
स्नातकोत्तर, द्वितीय वर्ष

स्त्री धन का शाब्दिक अर्थ है- स्त्री की संपत्ति, जो स्त्री को विशिष्ट अवसरों या जीवन के विभिन्न स्तरों पर प्रदत्त होते हैं। धीरे धीरे ये प्रकार, विस्तार एवं मूल्य में बढ़ते गए। मिताक्षरा के अनुसार स्त्रीधन शब्द यौगिक हैं- **स्त्रीधन शब्दस्य यौगिको न परिभाषिक:**। स्त्रीधन की एक विशेषता यह रही है कि गौतम के काल से आज तक यह प्रथमतः स्त्रियों को ही प्राप्त हुई है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार स्त्रीधन के प्रकार इस रूप में वर्णित हैं

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यञ्जूपागतम्। आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परीकीर्तितम्।।

पिता, माता, पति, भाई के द्वारा दिया हुआ, विवाह के समय अग्नि के समक्ष मातुल आदि के द्वारा दिया हुआ, दूसरे विवाह के समय पहली पत्नी को दिया हुआ तथा दायक्रीय, विभाग, परिग्रह तथा अधिगम के द्वारा प्राप्त धन को स्त्रीधन कहा जाता है।

१• पिता, माता, पति, भाई द्वारा जो प्रदत्त धन होता है, वह स्त्रीधन कहलाता है। मिताक्षरा के अनुसार - **पित्रा मात्रा पत्या भ्रात्रा च यदतं।**

कात्यायन के अनुसार विवाहिता कन्या को पति या पिता के घर में भाई, माता, पिता से जो कुछ धन प्राप्त होता है, वह 'सौदायिक धन' कहलाता है। सुदाय अर्थात् संबंधियों से प्राप्त धन को सौदायिक कहा जाता है।

२• विवाह के समय अग्नि के समक्ष मातुल आदि बन्धुओं के द्वारा दिया गया धन या विवाह के समय अग्नि के समक्ष जो धन दिया जाता है, वह अध्यग्नि शब्द से कहलाता है।

विवहकालेअग्रवधिकृत्य मातुला दिभिर्दत्तम्।

कात्यायन का भी कहना है कि विवाह के समय अग्नि के समक्ष स्त्री को उद्देश्य करके जो धन दिया जाता है उस धन को अध्यग्नि कृत स्त्रीधन कहा जाता है।

३• अधिवेदननिमित्तक अयिपित्र स्त्री के लिए जो धन दिया जाता है, वह सभी प्रकार के धन स्त्रीधन शब्द से कहा गया है।

आधिवेदनिकम् अधिवेवदननिमित्तम् अधिविन्नस्त्रियै यद्यात्।

एक स्त्री के विद्यमान रहते हुए भी किसी कारणवश दूसरा विवाह करते हैं उसको अधिवेदन शब्द से कहते हैं। उस विवाह कारण पुर्वपत्नी को जो धन दिया जाता है उसे अधिवेदनिक शब्द से कहते हैं।

ये सभी प्रकार के धन स्त्रीधन कहलाते हैं। श्लोक में प्रयुक्त आद्य शब्द से रिक्य (दाय), क्रय, संविभाग, पारिग्रह तथा अधिगय से प्राप्त धन भी स्त्रीधन ही कहलाता हैऐसा मनु ने कहा है - **आद्य शब्देन रिक्थ क्रयसंविभागपरिग्रहयधिगयप्राप्तमेतस्त्रीधनं मन्वादिभिरुक्तं।** मनु ने **अध्याग्नियाध्वहनिकं दत्तं व प्रीतिकर्मणि। भ्रातृ मातृ पितृप्रप्तम् षडविधनं स्त्रीधनं**

स्मृतम्। इत्यादि श्लोक से स्त्रीधन को छह प्रकार का माना है। उनमें प्रयुक्त षटत्व संख्या न्यूनसंख्या की व्यवच्छेदिका हैं, अधिक संख्या की व्यवच्छेदिका नहीं है। इसलिए कात्यायन भी छह प्रकार के स्त्रीधन हैं। बताते

४• पिता के घर से पति के घर जाने समय जो धन दिया जाता है, उसको अध्यावहनिक स्त्रीधन कहते हैं।

५• सास तथा श्वसुर प्रीतिपूर्वक जो कुछ भी धन देते हैं तथा पादवंदनिक अर्थात् चरणस्पर्श के समय जो व्यक्ति उस कन्या को धन देते हैं, उस धन को प्रीतिदत्त स्त्रीधन कहते हैं।

बन्धुदत्तम् तथा शुल्कमान्वाधेकमेव च।

मातृबन्धु तथा पितृबन्धु के द्वारा दिया हूआ, कन्या के बदले में प्राप्त धन तथा विवाह के पश्चात् प्राप्त धन भी स्त्रीधन कहलाता है।

६• बन्धु अर्थात् कन्या के मातृबन्धु तथा पितृबन्धु के द्वारा कन्या को उद्देश्य करके प्रदत्त धन को बन्धुदत्त धन कहते हैं। यह भी स्त्रीधन है।

७• धन ग्रहण कर के जो कन्या प्रदान किया जाता है,उसे शुल्क शब्द से कहते हैं।

शुल्कं यत् गृहीत्वा कन्या दीयते।

८• परिणय धन को अन्वाधेयक स्त्रीधन कहते हैं। (प्रदत्त) तके पश्चात् आहि (विवाह)

अन्वाधेयकम् परिणयनादनु पञ्चादाहितं दत्तम्।

कात्यायन ने कहा है कि विवाह के पश्चात पतिकुल तथा पितृकुल से कन्या जो धन प्राप्त करती है। उस धन को अन्वाधेय स्त्रीधन कहते हैं।

स्मृतियों के कथनों से व्यक्त होता है कि स्त्रीधन एक प्रकार का ऐसा धन है जिसमें पहले छह प्रकार की सम्पत्ति की गणना होती थी और आगे चलकर यह नौ प्रकार का हो गया तथा कात्यायन के समय में उसमें सभी प्रकार की सम्पत्ति सम्मिलित हो (चल या अचल) गई, जिसे कोई स्त्री कुमारी अवस्था में या विवाहित होते समय या विवाह के उपरांत अपने माता पिता या कुल या माता पिता के संबंधियों या पति एवं उसके कुल से अचल संपत्ति को छोड़कर प्राप्त करती है। आज के न्यायालयों ने टीकाकारों द्वारा स्थापित मान्यताओं को ही प्रमाणिकता दी है। इस प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति में उपर्युक्त स्त्रीधन का उललेख प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय चिंतन

निधि झा
तृतीय वर्ष, संस्कृत विभाग

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

संस्कृत साहित्य के अंतर्गत वैदिक साहित्य ,गद्य साहित्य ,प्राचीन काव्य,लौकिक साहित्य , आधुनिक साहित्य एवं ऐतिहासिक काव्य मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को अंतर्निहित करने के साथ साथ राष्ट्रवाद एवम् विश्व बंधुत्व के भाव को भी उजागर करने वाले हैं।

राष्ट्रवाद से तात्पर्य है - एक विश्वास, पंथ या राजनीतिक विचरधारा। वह धारणा या विचार जिसमें देश या राष्ट्र ही सर्वोपरि होता है। राष्ट्र की परंपराओं का पालन एवम् सम्मान किया जाता है। यह धारणा ही राष्ट्रवाद कहलाती है। संस्कृत वाङ्मय के अंतर्गत वैदिक साहित्य के राष्ट्र शब्द का उल्लेख मिलता है। समृद्ध एवं वैभवशाली राष्ट्र की कामना वैदिक सूक्तों के अनेक मंत्रों में वर्णित है। राष्ट्र की समुन्नती की कामना करते हुए शुक्ल यजुर्वेद में उल्लेख किया गया है-

आ ब्रह्यन् ब्राह्मणो बह्मवर्चसी जायताम्आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्यः अति
व्याधी महारथो जायताम्दोग्धी धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः
पुरंध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयोयुवाअस्य यजमानस्य वीरो जायतां
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतुफलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्
योगक्षेमो नः कल्पताम्। (शुक्ल यजुर्वेद ; अध्याय २२, मन्त्र २२)

अर्थात इस मंत्र से राष्ट्र एवं राष्ट्र में निवास करने वाले सभी प्राणियों की सुख समृद्धि की भावना से ओतप्रोत हैं। राष्ट्रवाद की सुंदरभव्य और श्रेष्ठ कल्पना संस्कृत साहित्य के , अतिरिक्त अन्यत्र असंभव है।

राष्ट्र वस्तुतः वही श्रेष्ठ एवं उत्तम होता है, जहां के निवासी सदैव प्रेम से एवं मिल जुल कर रहें। राष्ट्र की उन्नति एवं विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वहां रहने वाले लोग बहु भाषा भाषी एवम् विविध धर्म के अनुयाई होने पर भी परस्पर प्रेम एवं बंधुत्व का भाव रखते हैं या नहीं। यथा- **ये देवा राष्ट्र भितोSमितो यन्ति सूर्यम्।**
तेष्हे रोहितः संविदानो राष्ट्र दधातु सुमनस्यानः।।

धर्मशास्त्र ग्रंथों में राष्ट्रवाद का स्वरूप उपलब्ध होता है। अग्निपुरण में राष्ट्र की श्रेष्ठता के संदर्भ में कहा गया है - **राज्याऽग्ना परं राष्ट्र साधनं पालयते सा।**

संस्कृत साहित्य में राष्ट्र की समुन्नति हेतु निर्देश देते हुए कहा गया है- **य एव यन्त्न: क्रियते पर्राष्ट्र बिमर्दन।स एवं यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्र परिपालने।।**

प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के मंत्रों में राष्ट्रवाद के आधारभूत सिद्धांतों का अस्तित्व दिखाई पड़ता है। अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त में आर्यों की भूमि के रूप में धरती माता का यशोगान किया गया है- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।**

विष्णु पुराण में तो राष्ट्र के प्रति श्रद्धा भाव अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचता दिखाई देता है। इस में भारत का यशोगान पृथ्वी पर स्वर्ग के रूप में किया गया है-

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतोहि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः॥(विष्णुपुराण २/३/२२)

महाभारत में भीष्मपर्व में भारतवर्ष की महिमा का गान इस प्रकार किया गया है-

अत्र ते कीर्तिष्यमि वर्ष भारत भारतंप्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य।
अन्येषां च महाराज क्षत्रियर्णाम् बलीयसाम्सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतां।।

गरुड़ पुराण में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की अभिलाषा कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है-
स्वाधीन वृत्त साफल्यं न पराधीनवृतिता।ये पराधीनकर्मणो जीवान्तोअपि ते मृताः।।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत सभी के सुख एवं मंगल की बहुत ही सुन्दर कामना की गई है जो कि राष्ट्रवाद का अनुपम दृष्टांत है। संस्कृत साहित्य में ऐसे बहुत से दृष्टांत एवं नैतिक मूल्य उपलब्ध होते हैं जो कि राष्ट्रवाद, देश प्रेम एवं विश्व बंधुत्व की भावना पर बल देते हैं। **"वसुधैव कुटुंबकम्"** की भावना हमारी संस्कृति की ही देन है। वर्तमान में भारत देश भ्रष्टाचार, स्वार्थ लोलुपती, चाटुकारिता इत्यादि दोषों से घिरा हुआ है। देश में अपराधीकरण, साम्प्रदायिकता और जातिवाद हावी हो रहा है। ऐसी स्थिति में संस्कृत साहित्य में वर्णित राष्ट्रवाद का उज्ज्वल स्वरूप मानव का प्रेरक हो सकता है।
भारत राष्ट्र की अखंडता भारतवासियों की पारस्परिक एकता एवं प्रेम पर ही निर्भर है। आज भारत की अखंडता एवं एकता लिए संस्कृत साहित्य अत्यंत उपयोगी है।

गीता का कर्मयोग तथा आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता

मंशा जाट
तृतीय वर्ष, संस्कृत विभाग

संशयहीन दुविधामुक्त आनंद की अनुभूति ही वास्तव में जीवन का चरम लक्ष्य है, परन्तु इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कोई छोटा वाला मार्ग नहीं है। अर्जुन के रूप में प्रत्येक साधक को सम्पूर्ण रास्ता स्वयं तय करना पड़ता है,सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना पड़ता है। इस मार्ग का पालन करना ही गीता का कर्मयोग है। इस कर्मयोग के पथ-प्रदर्शक स्वयं श्रीकृष्ण हैं। यह यात्रा मनुष्य को असत् से सत्, अंधकार से प्रकाश, मृत्यु से अमरत्व, अज्ञान से ज्ञान, अकर्म से कर्म तथा विषाद से आनंद की ओर ले जाती है। गीता में निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी गई है। "कर्मयोग" कर्म व योग से बना है। 'कृ' धातु में मनिन् प्रत्यय लगाकर बनता है 'कर्मन्', जिसका अर्थ है करना, कार्य, गतिशीलता, कर्तव्य आदि और 'योग' शब्द युज् धातु में धञ् प्रत्यय लगाकर बनता है, जिसका अर्थ है जोड़ना या मिलना। इस प्रकार गीता का ज्ञान 'अथातोकर्मजिज्ञासा' से ही प्रारंभ होता है। "कर्म अपरिहार्य है" अर्थात् कर्म करना अनिवार्य, अपरिहार्य है। बिना कर्म किए तो जीवन की यात्रा भी संभव नहीं- "**शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मण:**"।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, यहां हर व्यक्ति का जीवन अन्य अनेक व्यक्तियों की सहायता तथा सहयोग पर निर्भर है। यह संसार एक उपक्रम है, जहां देवों और मनुष्यों के बीच मनुष्यों-मनुष्यों के बीच सहयोग अपेक्षित है। यदि व्यक्ति आत्मकेंद्रित रहता है तथा परिवार व समाज के लिए कुछ उपादेय कर्म नहीं करता है तो वह परजीवी कहलाता है। यदि किसी समूह में ऐसे बहुत से लोग हो जाएं तो वह समूह जीवन के आवश्यक तत्वों की कमी से नष्ट हो जाएगा, जो व्यक्ति या जतिसमुह यदि धार्मिक कर्मकाण्ड या ध्यानादी को महत्व देते हुए भौतिक उन्नति की उपेक्षा करते हैं तथा कर्म को गौण मानते हैं उन्हें अपनी निष्क्रियता की बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। सम्पूर्ण सृष्टि भी कर्मचक्र में बंधी है। सृष्टि में सभी पदार्थ यहां तक की वृक्ष, नदियां, पवन बादल, प्राकृतिक शक्तियां जैसे सूर्य प्रकाश आदि सब कर्म करते हैं। सृष्टिकर्ता स्वयं कर्म में लीन रहते हैं।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

कर्म के साथ ही जुड़ा हुआ है कर्मफल। सामान्य रूप से माना जाता है कि जैसा कर्म हम करेंगे वैसा ही फल मिलेगा। लोक में भी प्रचलित है- बोया पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाए। तुलसीदास ने भी कहा है- कर्म प्रधान बिस्व कुर राखा। जो जस करहिं तो तस कल चाखा। कर्म साधारणतया जैसे किए जाते हैं वे फल से संबंधित रहते हैं- यही सत्य है। इसी

लिए हम सब कर्मफल के बंधन से बंधे रहते हैं। कर्मो के परिणाम चाहे सुखदायक हों या दु:खदायक, उन्हें झेलना ही पड़ता है। महाभारत की भी यही मान्यता है-

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।

करमन की गति न्यारी का भाव यही है की बहुत बार हमें जीवन से ऐसा कुछ प्राप्त होता है जो वर्तमान जीवन से संबंधित नहीं होता वह पूर्व जन्म के कर्मों का परिणाम होता है। हर एक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। भौतिक जगत के गति सिद्धान्त में यही विधान न्यूटन के प्रसिद्ध नियम में व्यक्त किया गया है की हर एक क्रिया की सदृश परिमाण में प्रतिक्रिया अवश्य होती है। यह सिद्धान्त मात्र कर्म के संबंध में नहीं अपितु विचारों के संदर्भ में भी शत प्रतिशत सिद्ध है। कर्म अपरिहार्य तो है ही बंधन मैं डालने वाला भी हैं क्योंकि शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के कर्म भोगने के लिए बार-बार जन्म के चक्र में फंसना पड़ता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का चरम मोक्ष प्राप्ति हैं, मोक्ष अर्थात् - जन्म मरण के चक्र से मुक्ति अर्थात् - शुभाशुभ कर्म फलो से मुक्ति। यहां यह भी स्मरणीय रहे कि 'निष्क्रियता' से नहीं सक्रियता से मिलती है। कर्म की अपरिहार्यता एवं उसकी बंधन शक्ति द्वारा उत्पन्न विकट स्थिति से निकलने का मार्ग भी गीता बताती है। गीता में कर्मयोगी श्रीकृष्ण इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि बंधन शक्ति कर्म से नहीं बल्कि उस कामना से उत्पन्न होती है जिससे कर्म किया जाता है। अतः सरल मार्ग प्रतीत होती है कि कामना का त्याग कर दिया जाए । परंतु कामना का त्याग की देने भर से नहीं हो पाता।यह केवल बुद्धि का प्रयोग नहीं है। यह हृदयमंथन से होता है। इस त्यागशक्ति को पैदा करने के लिए ज्ञान चाहिए। अतः गीतकार ने भक्ति को ज्ञान के साथ मिलाया है। यही कारण है गीता में 'मुक्ति' के तीन साधन - निष्काम कर्म, ज्ञान तथा भक्ति प्रतिपादित हुए हैं। ये तीनों एक दूसरे से कहीं न कहीं जुड़े हुए भी हैं।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।

कर्म करने में स्वतंत्रता - मनुष्य शरीर में जीव को नवीन कर्म करने की स्वतत्रता है। कर्मों का त्याग करने में वह स्वतन्त्र नहीं है। यदि अहंकार पूर्वक हठ से कर्मों के स्वरूपत: त्याग की चेष्टा भी करें तो भी सर्वथा त्याग नहीं कर सकता-

कार्यते ह्यवश: कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणै:।

कारण उसका स्वभाव उसे जबरदस्ती कर्मों में लगा देता है। अतः कर्म करने का जो अधिकार है उसका सदुपयोग करना चाहिए। आसक्ति के त्याग से मनुष्य केवल पुण्यकर्मों के फल का हेतु तो नहीं ही बनता अपितु पाप कर्मों के फल का हेतु भी नहीं बनता। कारण आसक्ति रहित कर्म करने से नवीन पाप संभव नहीं होते और पुर्वकृत पाप भी अनासक्ति से नष्ट हो

जाते हैं। गीता में निष्कामभाव से किया कर्म फलों के बंधन से मुक्त करता है यह प्रतिपादित है-

योगस्थ: कुरु कर्मणि सङ्गत्य क्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयो: समो भूत्वा समत्वम् योगः उच्यते।।

फल त्याग आध्यात्मिक उत्कर्ष देता है - यहां यह भी ध्यान रखना है कि फल त्यागी को कर्मफल नहीं मिलता ऐसा नहीं है, वास्तव में देखा जाए तो फलत्यागी को तो हज़ार गुना फल मिलता है। गीता के फलत्याग में तो अपरिमित श्रृद्धा की परीक्षा है। समबुद्धि से युक्त होकर कर्मयोगी कर्मफल का त्याग कर जन्मबंधन से विमुक्त होकर अनामय पद को प्राप्त कर लेते हैं- **कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।**
जन्म बन्धनविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्तयानामयं ।।

फलासक्ति त्याग कर सर्वोच्च अनामय पद तो पाया ही जा सकता है उसकी व्यवहारिक भी हैं। सामान्य रूप से यह फल की इच्छा ही होती है जो हमें कर्मों में प्रेरित करती है। फलाशा न हो तो हम कर्म करें ही क्यों? परीक्षा में सफल होने की आशा ना हो तो हम पढ़ें ही क्यूं? व्यापार में लाभ की आशा न हो तो कोई तरह तरह के उद्योग ही क्यूं करे? वास्तव में फल की इच्छा या कामना होने पर यदि किसी कारणवश हमें फल प्राप्त नहीं होता है तो हम निराश हो जाते हैं, अवसाद में डूब जाते हैं। तो व्यवहारिक दृष्टि से यही हितकर होगा कि हम निराशा से बचने के लिए फल की आशा ही न करें। एक ओर हानि कर्मफल की अपेक्षा से होती है वह यह है कि तब हमारा सारा ध्यान, शक्ति, ऊर्जा जो कर्म में लगानी चाहिए फल में केंद्रित हो जाती है। इस प्रकार फल की आसक्ति का त्याग भक्ति को, सभी द्वंद्वों को समभाव से स्वीकार करने की शक्ति प्रदान करता है।तब वह सुख में उत्तेजित नहीं होता दुःख में उद्विग्न नहीं होता। द्वंद्वातीत होना ही फलासक्ति - त्याग का फल है।

निष्कर्ष - गीता का कर्मयोग मात्र सैद्धांतिक नहीं, वह बहुत व्यवहारिक है। वह पलायन का नहीं संघर्ष का मार्ग है। आधुनिक युग की अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान 'कर्मयोग' के माध्यम से किया जा सकता है। चिंता - तनाव- अवसाद सबको दूर कर प्रसाद की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त करता है वह 'कर्मयोग'। निष्काम कर्म करते हुए भक्ति जीवन मुक्त हो सकता है। कर्मशीलता में आनन्दानुभूति करते हुए पाप पुण्य सुख दुःख व जन्म मरण के बंधनों से मुक्त होकर उस ' ब्राह्मी स्थिति ' को प्राप्त कर सकता है। जहां पहुंच फिर से लौटने का प्रश्न ही नहीं उठता।

योग का स्वरुप

सद्भावना मोहन
तृतीय वर्ष, संस्कृत विभाग

महर्षि पतंजलिकृत योगदर्शन के चार पाद अर्थात चार अध्याय हैं- **समाधिपाद**, **साधनपाद**, **विभूतिपाद**, एवं **कैवल्यपाद**। महर्षिपतंजलि ने योग का लक्षण देते हुए कहा है :- "**योगशिचत्तवृत्तिनिरोधः**" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग हैं। 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति युज् धातु मे धञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होती हैं | 'योग' शब्द 'युजिर् योगे' तथा 'युज् संयमने', "युज् समाधौ" से बना हैं, ऐसा टीकाकार वाचस्पति मिश्र एवं विज्ञानभिक्षु ने स्पष्ट किया हैं। भाष्यकार व्यास के मत में योग एवं समाधि पर्यायवाची है। योग फल प्राप्ति के लिए चित्त से तात्पर्य **"चित्तमन्तःकरणसामान्यम्**"। अन्तःकरण सामान्य को ही चित्त कहा गया हैं। अन्तः करण सामान्य जिसे चित्त कहा गया है, वह वृत्ति भेद के कारण उसके चार विभाग माने गये हैं – मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार।

चित्त का स्वरुप ज्ञान वृत्तियों के निरोध के लिए अत्यांतावश्यक है। चित्त की जिन वृत्तियों के आधार पर गुण के प्रकार बताये गये हैं वह तीन हैं :- सत्व्, रजस्, तमस्। ज्ञान के आधार पर पांच प्रकार की मानी गयी हैं:- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। **विज्ञानभिक्षु** के मत में निरोध से तात्पर्य वृत्तियों के नाश से न होकर उनका अपने अधिकरण चित्त में लय रूप अवस्था में है। जिन वृत्तियों का निरोध योग का लक्षण हैं उनका ज्ञान होना नितांत आवश्यक हैं। अतएव सूत्रकार ने उनकी संख्या एवं स्वरुप का निर्धारण किया हैं- **क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट** के भेद से वृत्ति पांच प्रकार की होती हैं- "**वृत्त्यः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्ट्ाः**"चित्त की वृत्तियाँ पांच अवयव वाली होती हैं और वे (**क्लिष्टाऽक्लिष्टाः**) क्लिष्ट वृत्ति और अक्लिष्ट वृत्ति रूप से दो प्रकार की होती हैं। क्लिष्ट वृत्ति- क्लिष्ट से तात्पर्य व्यास देव उन वृत्तियों से मानते हैं जो की क्लेशों से उत्पन्न हो तथा कर्मसंस्कारो को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ ही क्लिष्ट कही जाती हैं। **वाचास्पतिमिश्र** ने अविद्या, अस्मिता, राग, तथा अभिनिवेश आदि वृत्तियों को ही क्लिष्ट वृत्तियाँ माना है।

विवेकख्यातिपूर्वक और गुणविरोधिनी वृत्तियाँ ही अक्लिष्ट हैं। ख्याति से तात्पर्य **वाचस्पति** मिश्र से हैं जिन्होंने रजस् एवं तमोगुण से रहित सत्त्व की प्रधानता है जिसमें ज्ञान के द्वारा अविद्या आदि का नाश करने वाली ही अक्लिष्ट वृत्तियाँ हैं। यद्यपि क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट दोनों ही प्रकार की वृत्तियों का निरोध अपेक्षित हैं तथापि पहले अक्लिष्ट वृत्तियों के द्वारा क्लिष्ट के निरोध का आधार उपदेश दिया गया हैं, जिसके पांच अवयवो वाली वृत्तियों का लक्षण बताया गया हैं-"**प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः**" प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और

स्मृति नामक चित्त की पांच तरह की ही वृत्तियाँ होती हैं। प्रमाण:- "प्रतायाक्षनुमानामाः प्रमाणानि"।

<u>प्रत्यक्ष प्रमाण</u>:- इन्द्रिय रुपी नलिका से चित्त बाहर निकलकर बाह्य वस्तु के साथ सम्बद्ध होता हैं और उसी वस्तु के रूप में परिणत हो जाता है। वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है किन्तु चित्तवृत्ति जब बाह्य विषय से सम्बद्ध होती हैं उस समय वस्तु उपरक्त हो जाती है उस समय वस्तु के विशेष रूप को प्रधानतया निश्चय करने वाली वृत्ति, प्रत्यक्ष प्रमाण कही जाती है। प्रत्यक्ष प्रमाण का फल पौरुषेय अर्थात् पुरुषवती बोध चित्तवृत्ति के बोध रूप में प्राप्त होता हैं। पुरुष प्रतिसंवेदी होता है।

<u>अनुमान प्रमाण</u>:- अनुमय का सजातीय में रहना विजातीय में न रहने वाला लिंग से उत्पन्न होने वाली चित्तवृत्ति ही अनुमान कहलाती है।

उदहारण:- यथा चंद्र और तारे गतिमान् हैं क्योंकि वे स्थानान्तरित होते हैं, चैत्र के समान। विंध्यपर्वत गतिरहित है क्योंकि वह देशांतर में नहीं जाता। ये दोनों ही अनुमान प्रमाण के उदहारण हैं क्योंकि यह लिंग अर्थात् हेतु के द्वारा हुआ है।

<u>आगम प्रमाण</u>:- आप्त पुरुष के द्वारा जब उपदेश दिया जाता हैं तब सुनने वाले व्यक्ति की वस्तु के सम्बन्ध में जो चित्तवृत्तिम बनती हैं वहीं शब्द प्रमाण या आगम प्रमाण है।

प्रमाण के यथार्थ स्वरुप का ज्ञान होना आवश्यक हैं जिसके लिए विपर्यय का लक्षण बताया गया है।

विपर्यय:- "**विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप्रतिष्ठम्**"। ज्ञेय पदार्थ से भिन्न मिथ्या रूप से प्रतिष्ठित होने वाली चित्त की वृत्ति विपर्यय कहलाती है अर्थात् यह पदार्थ के वास्तविक स्वरुप का बोध नहीं कराती, यह प्रमाण के द्वारा बाधित हो जाती है यथा नेत्र-दोष के कारण एक चंद्रमा के स्थान पर दो चंद्रमा का दिखाई देना विपर्ययवृत्ति है क्योंकि यह एक चंद्र विषयक यथार्थ ज्ञान के द्वारा बाधित हो जाती है। वाचस्पतिमिश्र एवं विज्ञानभिक्षु दोनों ने 'संशय' को भी विपर्ययवृत्ति के अंतर्गत ही माना है। अतः स्पष्ट होता है कि प्रमाण का ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान अथवा आगम से होता हैं इसके ही उपलक्ष्य में विकल्प का ज्ञान होना आवश्यक हैं जिसका लक्षण बताया गया हैं :-

विकल्पवृत्ति:- **"शब्दज्ञानानुपातीवस्तुशून्योविकल्पः"।** शब्द-ज्ञान से उत्पन्न होने वाली वस्तुशून्य ज्ञान विकल्प कहलाता है। यह न प्रमाण के अंतर्गत आता हैं और न विपर्यय के अंतर्गत। वास्तविक अर्थ से रहित होने पर भी शब्द ज्ञान की महिमा के कारण व्यवहार देखा जाता है। उदहारणार्थ:- चैतन्य पुरुष का स्वरुप है। जब चैतन्य ही पुरुष हैं तो कौन किस के द्वारा विशेषित किया जा रहा हैं और इस प्रकार व्यपदेश करने पर एक प्रकार की वृत्ति बनती है.

निन्द्रावृत्ति:- **"अभाव्प्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्रा।"** अभावप्रत्यय अर्थात् अभाव ज्ञान का आलंबन करने वाली वृत्ति को निंद्रा कहते हैं। यह निंद्रा वृत्ति भी ज्ञान या अनुभव ही है क्योंकि जागने पर मैं सुख में सोया, मेरा मन प्रसन्न और बुद्धि को निर्मल कर रहा है। मैं बहुत बेचैनी

से सोया, मेरा मन अकर्मण्य हो रहा है क्योंकि चंचल होकर भ्रमित हो रहा है। मैं खूब गहरी नींद सोया मेरा चित्त थका हुआ है। इस प्रकार का स्मरण बिना अनुभावात्मकज्ञान के नहीं होना चाहिए। उस अनुभव पर आधारित रहने वाली स्मृत्तियाँ नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट हैं की निंद्रा भी एक प्रकार की वृत्ति या ज्ञान है इस निंद्रा का भी अन्य वृत्तियों के समान समाधी की प्राप्ति के लिए निरोधक आवश्यक है। अंत में इस स्मृति नामक पांचवी वृत्ति का लक्षण दिया गया है क्योंकि यह प्रमाणादि के अनुभव पर आधारित होती है अतः उनके पश्चात् उल्लेख किया जाना उचित है।

स्मृतिवृत्तिः- **"अनुभूतविषयासम्प्रमोशः स्मृतिः।"**अनुभूतविषय की उपस्थिति ही 'स्मृति' कहलाती है। विज्ञानभिक्षु का मत हैं कि अनुभूतविषयासम्प्रमोशःस्मृतिः कहने से प्रत्यभिज्ञा में इस लक्षण की अतिव्याप्ति हो जाएंगी। पुर्वानुभूत विषय के असम्प्रोश को स्मृति कहा है।

- कल्पितस्मृतिविषयः- यह वह स्मृति होती है जिसके स्मरणीय विषय कल्पित हो ऐसा वाचस्पति मिश्र का मत है, भवितस्मर्तव्या स्मृतिवृत्ति स्वप्नकालिक होती है यह व्यासदेव ने स्पष्ट कहा है।
- यथार्थस्मृतिविषयः- वाचस्पति मिश्र इसे यथार्थ विषयक मानते हैं जबकि विज्ञानभिक्षु ने भवितस्मर्तव्या से भिन्न अर्थात् भविष्य की सूचना न देने वाली कहा है।

इस प्रकार प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति ये पांच प्रकार की चित्त की वृत्तियाँ हैं जिनका योगसाधनों के द्वारा निरोध किया जा सकता है। योग की जो चित्त वृत्तियाँ बताई गई हैं, उन्हीं के द्वारा योग की प्राप्ति संभव है। पुनः इसके साधन में कहा गया है **"अभ्यासवैराग्यभ्यां तन्निरोधः"** से अभ्यास वैराग्य के द्वारा संभव है।

पंचतंत्र की कथा और शैली

खुशबू बसोया
द्वितीय वर्ष, संस्कृत विभाग

पंचतंत्र का मूल नाम क्या था , यह निश्चित नहीं है, क्यूंकि सीरियन अनुवाद में इसका नाम 'कलिलग और दमनग और अरबी अनुवाद में कलिलह और डिमनह नाम मिलता है । ये नाम प्रथम तंत्र में प्राप्त दो शृंगाल करटक दमनक के नाम से विकृत रूप में है। ये नाम केवल पहले तंत्र में है, अतः पूरे ग्रंथ का यह नाम सार्थक नहीं है। हितोपदेश की प्रस्तावना में इसका नाम पंचतंत्र ही मिलता है। पंचतंत्र के कठमुख में ' एतत् पंचतंत्रकं नाम नीतिशास्त्रम से ज्ञात होता है कि लेखक ने इसका नाम पंचतंत्र रखा था।

पंचतंत्र मे तंत्र शब्द मुख्यतः विभाग या खंड का द्योतक है, परंतु साथ ही तंत्र शब्द राजतंत्र , स्वतंत्र आदि शब्दों में प्रयुक्त तंत्र शब्द के तुल्य नीति युक्त शाशन विधि का भी द्योतक है। पंचतंत्र मे नीतियुक्त शासन विधि के पाँच तंत्र बताए गए हैं।

कथा- महिलारोप्य के राजा अमर शक्ति के तीन मूर्ख पुत्रों को 6 मास में राजनीति पारंगत बनाने का बीड़ा उठाकर विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र कि रचना की और अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। पंचतंत्र में 5 मुख्य कथाएँ हैं। प्रत्येक कथा में अनेक उपकथाएँ हैं। प्रत्येक तंत्र में एक एक नीति शिक्षा दी है। तंत्रों के नाम आदि इस प्रकार हैं।

संख्या	तंत्रनाम	उपकथाएँ	श्लोक संख्या	कथा
1	मित्रभेद	22	461	शेर और बैल की मित्रता तुड़वाना।
2	मित्रसंप्राप्ति	6	166	काक, कूर्म, मृग, चूहे की मित्रता।
3	ककोलूकीय	16	255	कौए और उल्लू की कथा।
4	लब्धप्रकाश	11	80	बंदर और मगर की कथा ।
5	अपरीक्षितकारक	14	68	ब्राह्मणी और न्योले की कथा।

मित्रभेद मे नीतिशिक्षा वर्णित है, कि किस प्रकार दो मित्रों में झगड़ा करा दिया जाए। शेर पिंगलक और बैल संजीवक घनिष्ट मित्र थे। कर्कट और दमनक नामक दो गीदड़ो ने उनमे फूट दाल दी और बैल कि हत्या करवा दी। मित्रसंप्राप्ति में नीतिशिक्षा है कि अनेक उपयोगी मित्र बनाने चाहिए। ककोलूकीय में नीतिशिक्षा है कि स्वार्थ सिद्धि के लिए शत्रु से भी मित्रता कर ले और बाद में उसे धोखा देकर नष्ट कर दे, अर्थात संधि विग्रह की शिक्षा। कौआ उल्लू से मित्रता कर लेता है और बाद में उल्लू के किले में आग लगा देता है। लब्ध प्रकाश में नीतिशिक्षा है कि बुद्धिमान बुद्धि बल से जीत जाता है और मूर्ख हाथ में आई वस्तु से भी हाथ धो बैठता है। बंदर और मगर की मित्रता होती है। मगर कि पत्नी बंदर का मीठा दिल चाहती है। बंदर मगर से यह कहकर जान बचाता है कि मेरा दिल पेड़ पर छूट गया है, अतः किनारे पंहुचा दो। बंदर भाग जाता है और मगर मुह ताकता रह जाता है। अपरिक्षित कारक की नीतिशिक्षा है कि बिना विचारे जो करे सो पोछे पछताए ब्राह्मणी ने अपने प्रिय तथा सर्प से शिशु की रक्षा करने वाले नेवले की यह समझ कर हत्या करवा दी कि उसने बच्चे को मार डाला है । यह बिना विचारे काम करने से पीछे पछताती है।

पंचतंत्र कि शैली सरल और सरस है। बालोपयोगी होने के कारण इसमे प्रसाद और माधुर्य है। पांडित्यप्रदर्शन, क्लिष्ट रचना , दुरदोष शब्दावली का सर्वथा परित्याग किया गया है। हास्य और विनोद प्रियता कूट कूट कर भरी हुए है। छोटे छोटे वाक्य , सरल भाषा , सुरुचि पूर्ण उक्तियाँ कथा का प्रवाह और अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण विषय को रोचक और अत्यंत लोक प्रिय बना देते हैं। लेखक कि विदग्घटा , राजनीतिज्ञता, शास्त्रीय पांडित्य , वर्ण कुशलता, और हास्य प्रियता पद पद पर देखने को मिलता है। अत्यंत सरल शब्दों में छोटी सी कहानी का आश्रय लेकर गूढ राजनीति और उच्च शास्त्रीय बातों की शिक्षा देना लेखक के प्रकांड पांडित्य का परिचायक है। कथा के पात्र मनुष्य न होकर जीव जन्तु या पशु पक्षी हैं। अतः ये कथाएँ धर्म, जाति , व्यक्ति, राष्ट्र, और सभी प्रकार की संकीर्णताओ के ऊपर उठकर मानवमात्र की संपत्ति हो गयी है। यही कारण है कि ‘ Great Short Stories of the World’ (संसार की प्रमुख लघु कथाएँ) नामक आधुनिक कहानीसंग्रह में पंचतंत्र की कहानियों को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है।

Gandhian critique on Modernity

Dr. Shinumol T.C.
Deptt. Of Philosophy, Assistant Professor

Modernity has become one of the core themes of the contemporary philosophical thought. Modernity concerns not just the use of technological gadgets but the adoption of certain ideas, attitudes and practices that have shaped our mode of living in the world and the way of thinking about the world. Technology, even when it presents itself as the prime marker of Modernity, is significant only in relation to its promoting and being promoted by the mode of living and the way of thinking that constitute the essence of Modernity. The spread of Modernity exhibits two contradictory trends. In some quarters, it is accepted wholeheartedly as a vision of liberation. However, in some other quarters it is resented and even bitterly fought. This has resulted in a virtual split between two opposite camps, the pro-modern and the anti-modern. The friction between two camps ranges over the social, political, economic and cultural domains of contemporary life, that is to say, the kind of social relations Modernity sanctions, the political order which it promotes, the economic system it facilitates and the cultural ethos it nurtures. Mostly in the non-western world the ideological and institutional opposition to Modernity ranges from being non-modern to anti-modern. In either way, Modernity is rejected as a source of the organizing principles of our collective life and values that shape our individual lives.In some of the non-Western societies there is a strong tendency of neither embracing full-fledged Modernity nor rejecting modernity wholesale. The spokespersons of this trend speak in terms of Alternative Modernity. Through this paper I would like to look into Indian response to modernity especially through the prism of Mahatma Gandhi . This attempt would be very important as our society rapidly moving to Modern direction without taking into consideration of Gandhian dissent towards Modernity, Gandhi was very much aware about the danger of the sense of alienation that creates in the peopleof highly modern societies. He believed that before modernity alienates us let us alienates Modernity by not accepting modern values. Gandhian critique on modernity includes his critique on modern technology, law and medicine. His idea of Hind Swaraj is a vision for an alternative society.

Gandhi had analysed the phenomenon of Modernity and succeeded in exploring the real nature of Modernity. According to him, modernity undermines the importance of morality and religion and hence it is concerned only about bodily comfort, material pleasure, greed,exploitation and violence. Therefore, he believed that modernity is morally inadequate, deceptive, and self -distructive in nature and it is a hindrance to the moral growth of man. Gandhi says "The tendency of the Indian civilization is to elevate the moral being, that of the Western civilization is to propagate immorality. The latter is godless, the former is based on a belief in God"(M.k Gandhi, Hind swaraj or Indian home rule, p.99). Gandhi was very much critical about the modern technology which will gives raise to the establishment of instrumental value in society. He was against mechanisation because Indian economy suffers from chronic unemployment and under-employment in the villages on the one hand and it displace the useful labour on the other. For him, mechanisation is acceptable only if it does not displace the useful labour and machinery should be well used to simplify human effort, therefore, Gandhi was against the inappropriate use of technology. He was also against Industrialisation which will leads to complete mechanisation. Industrialisation become an evil if humans loses their control over machinery and will be a subservient to it. Therefore, it substitutes human labour with machinery which will leads to unemployment and exploitation and it will increase the gap of have and have nots which will helps to accumulate the capital into few hands. According to Gandhi, industrialisation also destroys the villages and the

village crafts. He believed in the self sufficiency of the village. The modern phenomenon of Industrialisation and globalisation undermine the self-sufficiency and of the village.

In his ideal state, there is no political power because there is no state. Gandhi was against state for the very reason that of its coercive character. It represents violence in a concentrated and organized form such as police, military etc. He attacked the idea of government of a futile and artificial institution. Along with government the present party system,election and legislation also come in for criticism. Ideal society of Gandhi's conception would be stateless democracy. He found the nearest approach to his ideal of decentralized society in the autonomous village communities of India. In the ideal society small village communities will be responsible for the production and distribution of necessaries of life. He recommended equitable distribution as a practical measure.

Gandhi believed in the non-violent socialism which may also described as ethical socialism. The theory of trusteeship developed by him is rightly regarded as a form of socialism. He said that the realization of the ideal political freedom is one of the essential pre requisite. He wrote that swaraj of a people means the sum total of the swaraj of individuals. He further added that swaraj must be realized by every individual of the state. Gandhi recommended village republic as the ideal form of decentralized political power. According to him, it alone can quarantine maximum opportunity for individual growth and development through the panchayath system having self –contained, self governed and self –sufficient village communities.

Gandhi's political system was founded on certain principles.First and foremost, he was a firm believer in metaphysical and ethical idealism which finds its fullest expression in politics.By introducing religion into politics Gandhi wanted to introduce morality into politics. According to Gandhi, "Politics diverged from religion have absolutely no meaning".[1] Also said, "Human life is an individual whole; no line could ever be drawn between ethics and politics"[2].

For Gandhi religion and morality were closely inter linked. The principles of truth and non-violence forms the pivot of Gandhi's political activity and these are basically religious principles. The explained that there have been no religious movement in the world without its social, economic and political consequences. In politics his sole aim was to spiritualize or to moralize it. Thus he had invited a 'revolution' in the field of politics by introducing religion and morality into the very fabric of politics.

Gandhi was also against democracy. It promotes the interests of the majority. Democracy according to Gandhi must in essence mean the art and science of mobilizing the entire physical, economic and spiritual. Resources of all the various sections of people in the service of the common good of all. Under democracy individual liberty of opinion and action is guarded, for Gandhi democracy is an impossible thing until power is shared by all. Gandhi's notion of democracy is that under democracy the weakest should have the same opportunity as the strongest. This can never happen except through non violence. Everybody is his own master. The necessaries of life should be enjoyed by everyone. In democracy the individual will is governed and limited by the social will that is the state which is governed by and for democracy. Democracy must effectively work at the grass root level. Under such a system the weakest has the same opportunity as the strongest. Gandhi's another criticism on democracy was its 'majority'. He was a great critique of the majority system in democracy. He said that the opinion of minority has to be taken into consideration.Democracy, he mentioned, that is not a state in which people act like sheep. Under democracy individual liberty is guarded.He therefore believes that the minority has a perfect right to act differently from the majority. His

[1] . Ibid

[2]. Prabhu and Rao, Mind of Mahatma Gandhi, Navajivan Publishing House,3rd Edition, 1968

point is that minority could not be coerced or forced but only convinced, persuaded and respected.The tyranny of the majority must come to an end. He holds that democracy cannot be evolved by forcible methods. The spirit of democracy cannot be imposed from without. It has to come from within. Gandhi held that the rule of majority should not suppressed the opinion of even an individual. This would be the view of real democracy.

According to Gandhi 'true democracy' is based on non violence.The object of the state is to restrict or limit violence through the employment of force. In the opinion of Gandhi state is nothing but the manifestation of violence. So Gandhi said that what I disapprove of is an organization based on force, which a state is. He was convinced that force and violence are unavoidable aspect of the state. So Gandhi was a visionary of an ideal state of statelessness which he termed as the state of enlightened anarchy. The existence of the state in any form is hindrance to the moral development of the individual. Democracy and violence cannot go together. So they cannot be reconciled. Democracy is possible when there is perfect non violence. The positive aspect of the non violence is the largest love and the greatest charity. Gandhi believed that the modern state if they want to become democratic must truly and courageously become non violent. He says that the true democracy of the masses can never come throughuntruthful and violent means. Individual freedom can have the fullest play only under a rule of an adulterated ahimsa.

Gandhi's another critique of modern political order is based on centralization. For Gandhi centralization is the concentration of power and authority. It alone goes with violence. Gandhi said that power corrupts, absolute power corrupts absolutely. On thecontrary, decentralization always goes with the non-violence. Gandhi through his concept of decentralizationwas trying to find solutions to certain basic issues like arbitrary state power, unlimited violence, economic exploitation, removal of poverty and socio economic inequalities. Gandhi stood for decentralization of both political and economic power. He preached non violence as a means and basic tenet of political and economic decentralization. He preferred non violence ,because he believed that state represented an organism based on force or violence. He felt that violence must be avoided through decentralization of power from the state. That is, nothing but the non violence governance as well. That is why he favours the establishment of self sufficient on violent organizations.

Gandhi became a trenchant critique of modern democracy. Because parliamentary democracy system is based on party system. He mentioned that party is incapable of effecting any real social change. A radical change can only be carried out by the consent of all, whereas the party definition is a limited groups of people, not unite them. According to Gandhi, that is why , democratical system should be based on party-less system of democracy. According to Gandhi the contention that elections enable the people to participate in the administration of the country is a myth. Of course, on paper everybody has the right to contest on election. But in practice it is only the rich who can afford to so. In such a condition how can the poor raise their voice. A society or community is not the mere arithmetical sum of the individuals composing it. It is collective or communitarian. Modern elections merely create democratic oligarchy whereas what is needed is 'participating democracy' he mentioned.

Gandhi with his series of experiments with truth made him to suggest a suitable political organization that suits to the modern requirements. Gandhi stood for the freedom of the people. He held that people's independence should begin from the bottom. That is from the village level. Thus every village will be a republic or panchayath having full powers. He pleaded for decentralized economical and political power through the organization of village panchayat. Panchayat system symbolized decentralization for Gandhi. To him panchayath symbolizes the power of the people. Gandhi's objective was to bring about a non- violence through the evolution of village republic. He suggested that decentralization of power at the lower level was based on four values, non- violence, individual freedom, equality and the self

- reliance. Thus panchayatraj envisaged decentralization in politics with decentralization in economics. Panchayatraj should be a means to cultivate power of the people. Its objectives are eradication of poverty, unemployment and exploitation. The panchayath of every village republic is a key unit for decentralization of legislative executive and judicial powers. In such a village republic there will be perfect democracy based upon individual freedom. The individual is the architect of his own government. The law of non- violence rules him and his village are able todefy the might of a world. Here the last equal to the first or none is to be the first and none the last.

The law of non violence plays a pivotal role in individual and public life. This law rules him and his government. Non violence, individual freedom and equality are integral elements in Gandhi's concept of decentralized polity. His concept of decentralization was trying to find solutions to certain basic issues like state power, unlimited violence, economic exploitation of man by man, removal of poverty and socio-economic inequalities. Gandhi elaborated that it will brings a new era, a new socio-political and economic order along with happiness of all coupled with mental and moral growth. This society must naturally be based on truth and nom violence. Ultimately, it is the individual who is the unit.

Gandhi criticized modern economic order. Because there are few rich in whose hands is concentrated on the bulk of the nation's wealth. Gandhi accepted ethical orientation to economics. He said, "To me god is truth and love, god is ethics and morality".[3]True economics,according to Gandhi, "Stands for social justice, it promotes the good of all equally including the weakest and is indispensible for decent life"[4]. He laid emphasis on village oriented economy, on a simple way of life and on a co-operative socio economic texture Gandhi stood for economic equality. He said that, "that economics is untrue which ignores on disregards moral values".[5]The real meaning of economic equality is to each according to his needs. Economic equality is the master key to non –violent independence. He held that, "My idea of society is that while we are born equal, meaning that we have is right to equal opportunity, all have not the same capacity".[6] It simply meant that everybody should have enough for his or her needs. According to Gandhi working for economic equality means abolishing the eternal conflict between capital and labour. It means the levelling down of the few rich in whose hand is concentrated the bulk of the nation wealth on the one hand and a levelling up of semi starved naked millions of the other. Gandhi's concept of economic equality is through non-violence. In a non violent society it is possible to maintain economic equality. Economic equality of Gandhi had a people bias. His primary motive was social and economic emancipation of the masses. For Gandhi, true economics stands for social justice. He elaborated that, quantitatively, the major part of man's life depends on economics, but that is not be-all and end-all of a life. According to him the fulfilment of a human life consists in the satisfaction of its higher urges for development and expression through truth, love and beauty.

Gandhi was totally against maternity's economic system. Modernism is an age of capitalism in which trade and industry are controlled by private owners or multinational companies. To avoid its consequences Gandhi proposed the idea of 'trusteeship'. Non possession (aparigraha) and samabhava (equalism) are the basis of trusteeship. It means enjoy the wealth by renouncing it. Expanded it means, "Earn your crores by all means, but understand that your wealth is not yours, it belongs to the people. Take what your require for your legitimate needs and use the reminder of society".[7]

---

[3] . Tendulkar D.G.,MAHATMA,Vol.7, 2nd Edition, Publications division, 1960

[4].Prabhu R.K.,TRUTH IS GOD, Navajivan Publication House,1955

[5].Gandhi M.K.,HARIJAN, 9.10.1937

[6].THE COLLECTED WORKS OF MAHATMA GANDHI, Vol.25, Publications Division, New Delhi.

[7].Prabhu and Rao,MIND OF MAHATMA GANDHI, 3rd Edition,1968.

In order to bridge the gulf between the rich and poor Gandhi believed in the trusteeship theory. According to this theory, the rich men are the trustees of the wealth with them just as a trustee uses the trusts wealth for the welfare of the people and not his own interests. Similarly the rich men will use their wealth for public good. It is definitely usher a new era a new world order based on co-operation and non violence. Gandhi was not against capitalist but against system in which some are getting richness day by day. Trusteeship implies a voluntary acceptance by the rich to use their possession for the needs of the society. Elimination of exploitation and inequality are the goals of trusteeship. It provides a means of transforming the present capitalist order of society into an egalitarian one. Trusteeship is the material of which life is made because life ultimately consists of relationships and trusteeship is calculated to promote relationship among men whose interests and role seems to be conflicting. So trusteeship is the very condition of our existing together. According to Gandhi the excess wealth of a person belongs to the community and must be used for the welfare of the community. Take what we require for our legitimate needs, and use reminder for society. Gandhi noted that my being is responsible for my life, as well as for the lifer of my neighbor. This mutual responsibility is real trusteeship.

On the whole Gandhi believed that modernity posed a greater threat to humanity. It is deeply attached to the 'material comforts of life'. However, in a general sense it means good food, good clothing, good shelter, good company and good looks etc. Far greater value isattached to the present than in the past ages when man cared more for spiritual good than for material wellbeing. But he was not a blind critique of modernity as such. He accepts some of his contributions such as civil liberty, equality, rights, freedom of women and religious toleration etc. But it is conditional in that,"Liberty has to harmonious with swaraj, rights with duties, empirical knowledge with moral insight, economic development with spiritual progress and religious toleration with religious belief".[8] According to Gandhi industrial revolution brought into being a new mode of life. It changed peoples outlook on nature and human nature, religion, ethics, science, knowledge, politics and economics. Moreover, economic prosperity came to identified as the main object of politics. All aspect of modernity such as industry technology, machines etc are trying to increase materialistic or bodily pleasure based on restless greed and want".[9] For Gandhi unrestricted individualism is the law of jungle.

In short Gandhi argues that modernity suffered from several basic and interrelated limitation. First, it lacked moral and spiritual development. Secondly it has no guiding principle and it de-humanized man. He said that modernity perverted the human psyche and was suffered with the spirit of violence. According to Gandhi, "Non –violence has its source in soul force(atmabal) and violence in body force(sharirbal)"[10]. He uses number of terms to describe the qualities of soul-force: love –force(prem-bal),truth –force (satya-bal), compassion force(daya-bal), suffering force(tap-bal), and justice force (niti-bal). The soul can exercise these virtues only when the mind has control over itself and the passions –in one word, on self rule.

Gandhi noted that modern economy was only propelled by the search for profits. Its mechanical production does not consider its moral, cultural and other consequences. He firmly believed that modern life must be guided by a well considered moral theory indicating how men should live. Modernity's fetishism of technology has no other purpose than to produce cheap consumer goods and maximize profits. Gandhi felt that modernity reduced men to being its helpless and passive victims and represented a new form of slavery-more dangerous than the earlier ones. The importance attached to material objects and to the

[8].Ibid

[9] Gandhi M.K.,HIND SWARAJ AND OTHER WRITINGS Edited by Parel A.J.Cambridge University Press,2007

[10] Ibid

pursuit of wealth are the main tendencies of modernity. For Gandhi individual or self is the main concern.He accepts that every individual is a mixture of the bodily and the spiritual. Man is not merely a physical being. He has consciousness, conscience, will, emotion, aesthetic sense, a feeling sensibility and an insight into the nature of good and bad. These are all expressions of the spirit or soul present in him. The ultimate end or self realization of self is the development of personality, the freedom and the fulfilment. Clearly Gandhi's vision of man is never apart from society, nor is society dissociated for a single moment from man. He said, "If one man gains spiritually, the whole world gains with him and,if one man falls, the whole world falls to that extent"[11]. According to Gandhi no one can attain perfection while he is in the body for the simple reason that the ideal state or truth realization is impossible so long as one has not completely overcome his ego. He said that it is impossible for us to realize 'perfect truth' so long as we are imprisoned in this mortal frame. The goal ever recedes from us. Satisfaction lies in the efforts not in the attainment. Full effort is full victory. Man is the end and everything else only the means .Things and institutions are not end in themselves, but only the means to serve man. Nothing is nobler than man. But modernity gives prior importance to body-in short it is materialistic. Just because of these Gandhi criticized modernity.

ACADEMIC ASPECT OF SANSKRIT IN VARANASI

Rajal Rajpurohit
Third year, Department of Sanskrit

The mother of all languages 'Sanskrit' also known as the classical language of Indian subcontinent has been fading over the course of time, to keep it closely intact with the Indian soils endless efforts have been made by the oldest living city of India ,Varanasi . **Varanasi also known as the cultural capital of India**, is famous for it's religious and spiritual lifestyle. It is one of the most important pilgrimage spot for Jains, Buddhists and especially Hindus. Situated on the banks of Holy Ganges Varanasi has been a mute witness to the great historic upheavals and events . The religiosity of the region is evident from the fact that Buddha , Jain Tirthankars, several Shaiva and Vaishnava saints , Kabir and Tulsi were either born here or associated with the place in a significant way and have spent a long time here. People of Banaras are known for being the exponents of Vedic philosophy, arts ,music, architecture etc.

In Varanasi the atmosphere is relaxed in general and we can see people chewing the famous paan and chatting in a laid- back manner but with this Banaras is also the ancient seat of education in India**(Sarva Vidya Ki Rajdhani).** Since ancient times it is a great centre of learning Sanskrit language. Over a period of time it has produced great scholars of Sanskrit. Varanasi is a true example of Guru-Shishya tradition which has helped in the growth and development of Sanskrit language. Many great works of Sanskrit has been penned at Varanasi like Pandit Jagannath's Gangalahari was composed in Sanskrit in Varanasi which praises the holy Ganga that flows through the city.

Varanasi is also blessed with Banaras Hindu University (BHU), which is still famous throughout the country for it's scholars. **Sanskrit Vidya Dharma Vijnan Sankaya** was established at BHU in 1918 the great founder **Pandit Madan Mohan Malviya** in order to materialize the goal of this university that is to preserve and promote the studies of Ancient Indian Shastras ,Sanskrit language and literature with the intention to bring about fruitful dialogue between the East and the West. This faculty is unique in it's nature .They teach Shastric texts strictly in keeping with our traditional methods of hermeneutics as well as oral cum written tradition. Apart from this, the **Sampurnanand Sanskrit University** was set up at Varanasi to keep intact the traditional scholarship and to strike a balance between Indian and Western outlooks and to conduct research and to study various aspects of culture and spiritual literature . Over a period of time this university has contributed towards the development of Sanskrit language by taking up the study and research on Vedas, Vedantas ,Puranas , Ayurveda, Astrology, Theology etc. It has played an important role in the growth of Sanskrit language through translation and publication of specific texts as well as cataloguing of manuscripts. It has also helped in the grooming of new and talented scholars who are well versed in the knowledge of traditional Sanskrit and fully acquainted with modern thoughts and re capable of carrying on comparative studies on modern lines.

Increasingly Sanskrit has been viewed as the religious language of Hindus, but the academic institutions of Varanasi are making continuous efforts to remove the pervading misconceptions and reinstate the relevance and true essence of Sanskrit as a scientific and global language.

Begin Again

Neelam Devtala
Second year, Deptt. of Sanskrit

Its aptly convincing that Marx's vision of human life was highly philosophical and his theory of creative free labor is most intrinsic to it. This competition we face today, the fear of making mistakes in life which in all circumstances is very human, have become inseparable part and parcel of life. There's no doubt that this capitalistic society has molded us into proletariats who have succumbed to market forces losing all the capacity to produce free labor. If we see it in a philosophical sense, we consider human life to be the supreme most creation of god (putting Marxist theory aside for a minute which would otherwise nullify the existence of god). The question worth a thought here is are we really valuing ourselves as humans and I am quite skeptical about it cause all I see is people running rat races., throwing their talents away considering them to be so trifle to help them achieve their lofty dreams which are no more based on the idea of subsistence but rather on luxury which sees no bounds in this fully fledged capitalistic society.

To explain this situation, I am reminded of famous poem by Robert frost- 'The Road not taken'. Our lives have become victim of our own inability to see beyond what the society shows us. The very evidence to this fact can be obtained in old age when seeing a famous artist or a writer on television or anywhere else suddenly invokes that latent writer or artist within us who shouts trapped in our hearts yearning for freedom and anguish haven not given a chance following the conventions of the society. What this programmed human has done is, he has killed his soul, killed his creativity because what drives his life now is avarice and his fetish for materialistic gains.

I too have not been spared. All this time my reason behind not sitting to write has been these forces which are leading our society astray. The evilest of these forces in my opinion is the comparison that we undergo in our lives without which life would have been very simple. Often a man does not fear his failure because he is doubtful of his capabilities but because he is scared of the society's standards on which they test him. This comparison as known an idea as it seems, is rooted deep down to almost everything around us. But the whole idea of these comparisons can be dismantled the moment we realize the worth of our creativity and owing to this creativity of ours, the uniqueness that we hold, which makes us so incompatible to be compared with anyone around us.

We still have time to think what our life would have been like, going for the alternatives which lie inactive, yet pangs to make them true are felt very often. Maybe money cannot satisfy us as much as our creativity can but what hinders us is the fear of not being able to amass wealth through that creativity, fame through that creativity but I ask everyone including my own self, is happiness not enough in life and is subsistence ethic not enough to make us going well in life, because at our death beds what would be satisfying us the most would be these moments of happiness and not the amount of money we earned.

But other important question that arises from this discussion is that how can we help ourselves out of this societal race, in my opinion one of the most tested methods to discover your own self is through meditation (dhyana). Our Indian philosophy bears the epitome of spiritual knowledge which is much needed in this capitalistic market which has

always been revolving around the ways by which we can wipe out these material instincts of a man and liberate him from the suffering (dukkha). And one should not mistake philosophy for religion, as philosophy is what is beyond the reach of religion and answers the most complex of questions about human existence and human life. There are various methods which Indian schools of philosophy devise and the two most important component of these philosophies is (dhyana) and (yoga). Not only do these cleanse one's mind but also they activate the latent creativity of a man which can give him a sense of freedom from the societal obligations linking our soul with the cosmic energies present around us and push us toward a productive path. True meaning of life can only be understood when we realize the worth of our latent capacities and creativities and then no chains of competition can ever act as an impediment in living a worthy life.

For those who are sick of this competition and don't want these dark clouds to remain long in our society we will have to begin again and this beginning can only be achieved if we give ourselves time to introspect, realize our uniqueness, give our talents a chance and rule out any possibility of comparison with the tool of our creativity and only through this can we be able to build a society worthy to live in and find true purpose of life.

GANIKAS- THE SILENT VOICES OF HISTORY

Shreya Sinha
Second year, Deptt. of Sanskrit

Women are regarded as the silent voices of history, but they have been subordinated and oppressed in the past. Since ancient times a patriarchal frame work dominated women's socio cultural space, women tended to be under the protection of males who alone were qualified to represent the family. Whereas women in Rigvedic period enjoyed the relative freedom, in the subsequent period of Smritis and Puranas, they were reduced to virtually completed subservience as they were bracketed along with Shudras and treated as individual properties.

Prostitution, known as the world's oldest profession came to be recorded through out the history. It needs to be borne in mind that before the term 'Ganika' came into usage; it went through centuries of transformation both literally and conceptually. In early literature we find abundant references to secular prostitutes, dancers, courtesans. Prostitution in India can be traced back to archaeological findings of the Indus Valley. The bronze figure of dancing girl from Mohenjodaro represents a sacred prostitute carrying out her duties within precincts of temple of some mother goddess and this cult was quite well established in the Indus Valley Civilization.

In the Vedic age text like Rigveda, mentions the unmarried women for sale. Rigveda mentions the word 'Sadbarani' which refers to a woman who offers sex for payment. But clearly, by the later Vedic period a regularized form of prostitution became more prominent. The 'Vajasneyi samhita' seems to regard prostitution as a profession. Prostitution was common during the reign of Pandavas and Kauravas. They were an important part of the court and both the dynasties possessed harems of aristocracy in Brahmanical India. Mahabharata has recorded the name of 42 apsaras in all.

The dharmashatras look down upon prostitutes. The Smritis make thieves and other criminals the constant companions of public women. Manu associates Gana and Ganika in one verse saying that the offered by both may be refused by Brahmanas. However Smritus are more concerned with social and legal position of ganikas while most Puranas condemn them.

A review of prostitution in India would be incomplete if it not refers to the special class of women known as 'Devadasis' or dancing girls. For centuries the devdasis serving in temples were taught music and dancing with all wealth of detailed technique. Further they had an advantage of receiving training under technically competent traditional teachers. Unfortunately the system deteriorated and devdasis came to be increasing identified with prostitution.

'Mrichchakatika' deals with life of a noble courtesan though generally the courtesan is supposed to be exacting person, but this drama portrays that she is also capable of true love and could marry a man of her choice.

The general patriarchal notion is that prostitutes are socially redundant and immoral. Hence the double standard of patriarchal society becomes evident that though society readily utilized the fruits of her labor, on the other hand it looked down upon her.

REFERENCES:

'Prostitution in ancient india' ,Sukumari bhatacharji 'Ganikas in early india' , Monika saxena 'The world of courtesans',Mohit Chandra 'Mrichhkatika'-Act 1&4

Review of Kumarsambhavam by Kalidasa

Rajlakshmi
First year, Deptt. of Sanskrit

When a piece of writing is written from the heart of a writer, it stands out in a way that it touches the heart of the reader. It provides a feeling of immense pleasure and ecstasy that takes you in the world created by the writer.

Kumarsambhavam, written by one of the greatest writers of Sanskrit- Mahakavi Kalidasa, is one such epic poem of seventeen cantos. The literal meaning of the title is 'birth of kumara'. Kumara here signifies the son of Shiva and Parvati he will become the leader of the Gods in their battle with the demon Tarkasura, and will restore the glory of Indra. To marry shiva Parvati had to go through tapasya because he had won over kama. Although Kartikya is the reason for everything that takes place in this epic , the real protagonist of this epic are his parents.

Although the heroines of Kalidasa are endowed with the most beautiful physical traits , through parvati he emphasizes on the importance of internal strength and beauty, as she realized that it is her internal qualities and not her physical beauty that will get her both, Shiva and his love-

तथासमक्षंदहतामनोभवं, पिनाकिनाभग्नमनोरथासती।
निनिन्दरूपंहृदयेनपार्वती, प्रियेषुसौभाग्यफलाहिचारुता।।

The male protagonist of Kumarsambhavam is Shiva, the God of three lokas. He has this divine persona that makes him different from the rest of the heroes of Kalidasa. He is the one from whom the Gods seek help. He shows varied emotions in the epic. First he is someone who has withdrawn himself from all the wordly affairs and later he is someone who gets so much into the affairs of this world that has to be reminded of his duties.
The writing style of Kalidasa is beyond compare. He finely writes every detail in such a vivid manner that you can actually visualize it. His writings include nature in every way. Seems like Kalidasa can see human emotions in every movement of the nature. Comparing Parvati's situation to that of a river which is obstructed by a mountain and so can neither move nor stay is one such example-

तंवीक्ष्यवेपथुमतिसरसाङ्यष्टिनिक्षेपणायपदमुद्धतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेवसिंधुः, शैलाधिराजतनयानययौनतस्थौ।।

The main highlight of this epic is the description of the tapasya that Parvati goes through. It is her tapasya that makes her love pure and divine. The writer portrays Parvati's love for Shiva as the ultimate goal of her life and the tapasya is her struggle to achieve it. The hardships that she goes through during the tapasya signifies her determination for her goal as described in the fifth canto. For example here is the description of her winter nights during tapasya-

निनायसात्यंतहिमोत्करानीलाः सहस्यरात्रीरूदवासतत्परा।
परस्परक्रन्दिनीचक्रवाकयोः पुरोवियुक्तेमिथुनेकृपावती।।

Though the characters of this epic are Gods and Goddesses, still they follow the social traditions and ethics. Parvati first seeking permission from her father before going for tapasya-

कदाचिदासन्ननसखीमुखेनसा, मनोरथज्ञंपितरंमनस्वनी।
अयाचतारण्यनिवासमात्मन:, फलोदयान्तायतप: समाधये।।

Shiva asking from Parvati's father father before marrying her and their grand marriage are all such examples. The description of Kartikeya's birth is out of the normal way. Kalidasa very conveniently excludes Parvati from the pain of child birth. When she firsts sees him she is not even able to recognize him as her own child-

एतेषुकस्येदमपत्यमीशाखिलत्रिलोकीतिलकायमानम्।
अन्यस्यक्स्याप्यथदेवदैत्यगन्धर्वसिद्धोरगराक्षसेषु।।

Kartikeya appears in the eighth canto, possessing all the expected characteristics of Shiva and Parvati's son and also the leader of the Gods in their battle. The description of the fight takes over the last six cantos. Though the description is filled with the vira rasa but the narrative gets a little monotonous finally ending with the victory of good over evil.
Kumarsambhavam is filled with magical elements that makes you take a deep breath and appreciate the beauty. The writing style of Kalidasa makes it worth reading, no doubt it is regarded as one of the finest works of Kalidasa.

Technology Adoption in Agriculture in India: A Theoretical and Empirical Analysis

Tanya Singh
Second year, Deptt. of Economics

Around the beginning of 1900s, analytic philosophers were looking for a language with logical grammar and settled on Sanskrit. Today, there are scientists who study Sanskrit grammar, with the aim of learning its application in areas of science and technology. It is surprising to know that the land that has given birth to the most scientific and machine-friendly language shows dismal record in technology adoption. India is the world's largest information technology (IT) sourcing destination and a country that is increasing adopting technology as a pathway towards growth, development and modernisation. Not just urban India, but increasingly, rural populations are also adopting IT and Information Technology-enabled Services (ITES). However, the increasing technologization of the Indian population exhibits a contradictory trend. An analysis of data reveals that there is a greater degree of digital technology adoption, however, adoption of technology in agriculture is low compared to the former. With increasing development in the field of precision farming and agriculture, it becomes extremely important to analyse and dissect the reasons why Indians are not ready to use technology in the agricultural fields. A failure to do so could mean that advancements pertaining to agriculture in the field of science and technology shall remain confined to the laboratories and not benefit the farmers as well as the Indian economy.

To put things into perspective, two cases of technology adoption in agriculture are considered, former pertaining to micro-irrigation and the latter, pertaining to fertiliser consumption and usage patterns.

- Adoption of Micro-Irrigation in the time period 2005-2015

As a percentage of total agricultural land, the corresponding coverage of land under micro-irrigation was 1.72 % for 2005, 2.75 for 2010 and 4.3 for 2015 as shown by Figure 1.

- Fertiliser Usage in the time period 2001-2012

In chronological order, Urea was the first to have been adopted by the Indian farmers, followed by DAP (Diammonium phosphate) and then, MOP (Muriate of Potash) being the last amongst the three to have arrived on the scene. The usage adoption patterns reflect the inelasticity of change adoption amongst farmers with Urea being the most widely used, followed by DAP and after that, MOP, as is reflected in Figure 2.

Precision farming techniques such as variable rate seeding, use of sensors and geo-satellite imagery can enhance agricultural production and productivity exponentially, so it becomes imperative to enhance technology adoption rates, and a fundamental way of doing so is the use of information systems theories, as is done in this paper.

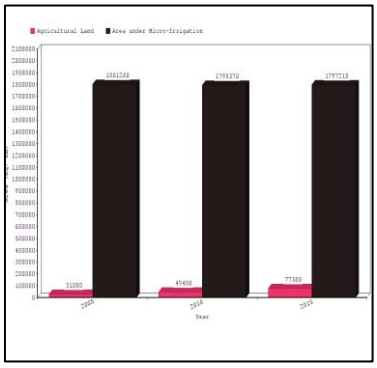

Figure 1 : Area Covered under Micro-Irrigation
Source : Indian Council of Food and Agriculture

Methodology: The paper makes use of empirical and statistical data to draw certain observations. Being a macroeconomic analysis, the data used for research is secondary in nature, using macro reports, generalised micro-study data and examples and lessons from other developing and underdeveloped countries.

The paper analyses the application, extensions and validations of technologies using two theories, the former an information systems theory and the latter a sociological theory, to indian agriculture and the trends of technology adoption rates therein. Two theories that have found a mention are the Technology Acceptance Model given by Fred Daviswhich is an information systems theory and secondly, the Technology Adoption Life Cycle, which is a sociological model given by Geoffrey A. Moore.

Figure 2 : Consumption of Major Fertilizers in India (million tonnes) Source : indiastat.com

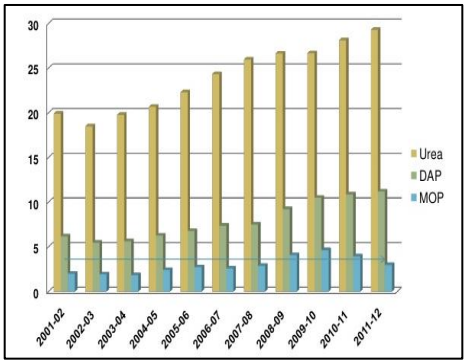

Discussion: The technology acceptance model (TAM) is an information systems model that shows how users accept and make use of a technology. The model puts forward the idea that when users are given a new technology, a plethora of factors influence their ability to make decision about whether, how and when they will make use of it. However, two main factors stand out and they are: Perceived usefulness (PU)–which is defined by Fred Davis as the extent to which a person believes that using a particular system or technology would enhance job performance; and Perceived ease-of-use (PEOU) which Davis defines as the degree to which a person perceives that using a particular system would be free from energy and effort (Davis1989). Key components of the model are highlighted in Figure 3. Apart from factors such as cost effectiveness of a technology and degree of effort, this paper explores factors that are not explicitly mentioned in the model, however have been found to influence technology adoption behaviour.

- Access to advisory-based services

Research in India tested the impacts of a mobile based service that provided farmers with agricultural consulting via a toll-free hotline and sent information on weather and crop conditions via an automated voice message every week. The study revealed a high demand for agricultural advice services, with a positive response from 80% of the farmers. Farmers with access to the service showed greater degree of technology adoption and consequently, greater degree of yields. Although it was estimated that the service yielded a $10 return per dollar, farmers' willingness to pay for the service was low, at roughly $2 for a subscription that costs $7 to provide, suggesting a subsidy policy to promote technology adoption (Cole and Fernando, 2016). Also, mobile agricultural services that required the farmers to pay subscription fees, were found to exclude the poorest farmers in a study done in rural Pakistan.

- Uncertainty pertaining to sub-standard input quality

Low quality of many agricultural inputs – poor-quality or counterfeit seeds, for example - can make it a dangerous prospect for small-scale farmers to take the risk of purchasing inputs. Instead, for example, they prefer to rely on seeds from their own harvest, resulting in substantially lower yields. Such input market inefficiencies are accentuated due to information gap. The above mentioned phenomena are seen widely in case of the market for seeds and inorganic fertilizers in sub-Saharan Africa.

Figure 3 : Technology Acceptance Model
Source : sciencedirect.com

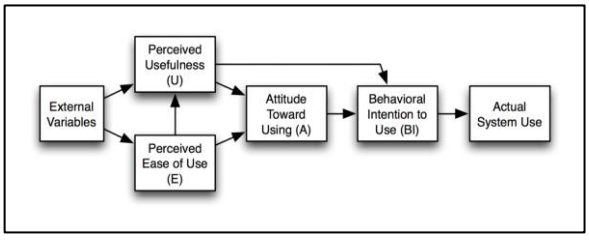

- Inefficient bureaucratic practices and unequal distribution of benefits

The impact of government programmes and extension services is often hindered by the top-down approach and inefficient management practices that are more widely prevalent in underdeveloped and developing countries when compared to the developed ones. Agricultural extension efforts often tend to reachbetter-off farmers instead of the poor ones.

- Gender Divide in Technology Adoption

Empirical evidence from a number of studies has revealed a higher adoption level and impact of improved technology on the male farmers. Certain other factors such as education, credit accessibility and off-farm activity participation was found to be positively related with technology adoption however, these indicators show a higher prevalence amongst men than women, so,indirectly explaining the gender divide in technology adoption. This factor is significant for indian agriculture as half of the sector comprises of women.

- Non-disruptive technologies are preferred over destructive ones

Technologies that are enhancing in nature, or continuous technologies i.e. innovations that do not require abandoning an already existing skill or product, but develop on the already existing technology show higher rates of adoption. On the surface, digital technology, as it exists in the agricultural areas, does not appear disruptive when compared to precision techniques in agriculture, that usually require learning new skills as well as equipments and devices.

The Technology Adoption Life Cycle

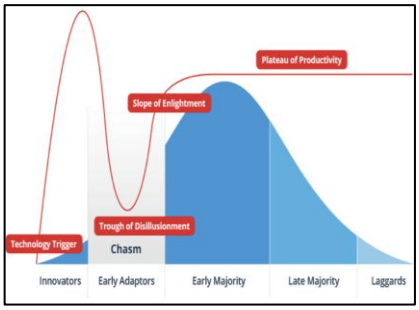

Figure 4 : The Technology Adoption Life Cycle
Source : sap.com

The process of adoption in the model overtime is illustrated as a classical normal distribution. The model indicates that the first group of people to use a new product is called innovators - have larger farms, are more educated, more prosperous and more risk-oriented followed by early adopters - younger, more educated, tend to be community leaders, less prosperous. Next come the early majority - more conservative but open to new ideas, active in community and afterward comes the late majority - older, less educated, fairly conservative and less socially active and the last group to eventually adopt a product are called laggards - very conservative, have small farms and least amount of capital, oldest and least educated. According to the model, a large proportion of the population of India that is engaged in agriculture would fall in categories that show resistance against technology adoption. They prefer tradition and would not be willing to adapt if a technology requires major changes in their lifestyles and economic life.

Conclusion: The above discussion indicates that the demographic composition of the agricultural population in India works against the adoption of precision technology due to its highly disruptive nature. Rather, a better way than precision farming would be greater use of digital agriculture due to two reasons. First, the apparently non-destructive nature of digital technology innovations would benefit population across the demographic spectrum, as they are continuous in nature, unlike precision technologies. Secondly, digitisation of agriculture is not very difficult to execute in a population that currently shows a very high growth rate in internet access. One major area of concern related to modernization and adoption of technology, however, is the gendered aspect of the phenomena. This becomes all the more important as agricultural population consists of large numbers of women. If the gender bias in technology adoption is not targeted, then technology adoption initiatives in agriculture, whether related to digital or precision technology, are bound to fail.

INSIGHTS INTO HINDU MYTHOLOGY: REVISITING MADHUBANI PAINTINGS

KRITIKA CHAUDHARY AND VRINDA GOEL
Second year, Deptt. of Psychology

INTRODUCTION

Madhubani paintings originated in the Mithila region of Bihar. Some of the initial references to the Madhubani painting can be found in the Hindu epic Ramayana when King Janaka, Sita's father, asks his painters to create these paintings for his daughter's wedding. Madhubani paintings got official recognition in 1970 when the President of India gave an award to Mrs. Jagdamba Devi of village Jitbarpur near Madhubani.[12] Madhubani paintings were categorized into five different styles, such as Tantrik, Kohbar, Bharni, Godna, and Katchni which have been merged by contemporary artists. The themes used in these paintings often revolve around Hindu deities, plants, animals and heavenly bodies like the Sun and Moon.

The characteristic features of Madhubani paintings are:- [13]

1. Use of bold natural and artificial colours. [Naturally, lamp soot serve as a source of black; white from powdered rice; green was made from the leaves of the apple tree and Tilcoat; blue from the seeds of Sikkot etc.]
2. A double line border with simple geometric designs or with ornate floral patterns on it.
3. Symbols, lines and patterns supporting the main theme.
4. Abstract-like figures, of deities or human.
5. The faces of the figures have large bulging eyes and a jolting nose emerging out of the forehead.

Maithilas are deeply religious and are influenced by Shiva, Vishnu and Shakti. Goddess Durga is the istadevi of all Mithila Brahmanas and Kayasthas. Kali has been predominant in the tradition of tantra which greatly influenced their character. Ritual needs determine mythological representations in Mithila. The important occasions that demand painting is the sacred thread ceremony and the two ceremonies of marriage where the subject matter is confined to depicting gods and goddesses - Durga and Kali, Rama and Sita, Radha and Krishna, Shiva and Parvati, Gauri and Ganesha, the ten avataras, whose presence through pictures create a truly auspicious scene and blesses the family. The paintings draw their themes from Puranas and epics. "Above all, they invoke the sympathetic action of natural forces with all their magic and mystery"[14]. The clothing of divine figures is decorated with floral and geometrical patterns. The figures are decorated with ornaments which are depicted by applying fish motifs [nose pins], circle [earring] etc. Head dresses are beautified in a stylistic pattern wherein floral motifs and dotted lines are used. Halo behind the head of a religious figure is usually shown. Women supremely engage in these paintings which illustrate their thoughts and hopes.

---

[12] Upendra Thakur , *Madhubani Painting* (New Delhi : Abhinav Publications ,1974) , 1

[13] Nibedita Das , "Madhubani Paintings : Its Existence and Possibility ," *International Journal of Scientific and Research Publications* , volume 3 , issue 2 (2013)

[14] Upendra Thakur , op. cit. , 68-71

INTERPRETATION AND DISCUSSION

Figure 1 : Chinnamasta Kali [15]

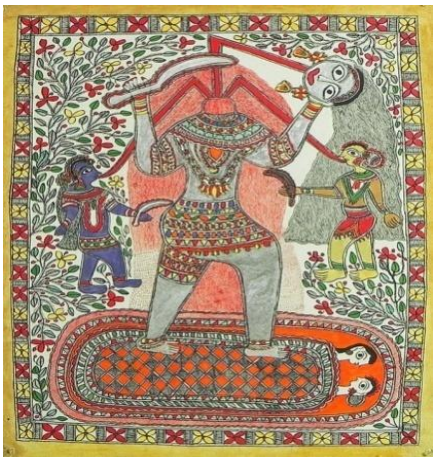

THE PAINTING: This painting depicts Chinnamasta Kali , the goddess without head . It represents two major style of madhubani painting : Bharni style as a variety of colours are used lavishly to fill the subjects and they are outlined in black. It also uses Tantric style because it depicts one of the Tantric goddess , manifestation of Devi Kali . Background is decorated by linear motifs of flowers and has double line border . Geometric patterns are also evident in the painting. Chinnamasta Kali is depicted partly nude . She is standing over a naked couple. The couple is said to be Rati, Goddess of sexual desire, and her husband Kama, God of love.[16] Blood streams out of her neck and her two female attendants Dakini and Varnini (also called Jaya and Vijaya) are drinking the blood. In the left hand, she carries her own severed head . In the right hand, she holds a khatri (a scimitar or knife) by which she decapitated herself.

MYTHOLOGICAL ROOTS :Chinnamasta , also known as Chhinnamastika and Prachanda Chandika is one of the Tantric Goddesses in Hinduism. Chinnamasta means, 'severed head'.[17] One legend of Narada-pancharatra narrates this story- Once while having bath in Mandakini river, Goddess Parvati got sexually excited and turned black. Meanwhile her two attendants named Dakini and Varnini (also called Jaya and Vijaya) were hungry and asked the goddess to satisfy their hunger. Goddess Parvati looked around but couldn't find anything to eat. So she severed her head and the blood flowed in 3 directions; one in Jaya's mouth, other in Vijaya's mouth and the third in Parvati's mouth .According to other legends , Chinnamasta is standing over a naked couple which is said to be Rati and Kama. Standing on their bodies , the goddess masters the physical body and the sexual desires and to free her mind from these , she cuts her head.

IMPLIED MEANING : Chinnamasta depicts the way life, sex, and death are intricately intertwined . She also symbolises maternal self-sacrifice in order to satiate her companions. She also represents the maternal figure of contemporary world , as mothers also make great amount of sacrifices to fulfil the need of her children .The nourishment symbolizes renewal of the universe. Kama and Rati provide Chinnamasta with a vital energy that she then transfers to the yoginis to provide nourishment and sustainment.[18] This can also be interpreted as the necessity of death in order to renew and replenish the cycle of life .

---

[15] Figure -1 https://www.google.com/search?q=chinnamasta+devi+madhubani+painting&tbm=isch&source=iu&ictx=1&fir=73TPAbWck0EHqM%253A%252ClBYVMvI3U3chZM%252C_&usg=AI4_kSzGPkLs5Nlv3GJCAifDNztPgotvA&sa=X&ved=2ahUKEwiHr4Pi2IjgAhUBN48KHQg3Dg8Q9QEwAHoECAYQBA&biw=1024&bih=503#imgrc=73TPAbWck0EHqM

[16] "Chinnamasta: The Goddess Without A Head ," Boldsky , AccessedJanuary 4, 2019 , https://www.boldsky.com/yoga-spirituality/faith-mysticism/2013/chinnamasta-goddess-without-head-035335.html

[17]Ibid , 1

[18]" Chinnamasta , The Ten Mahavidyas ," Mahavidya , Accessed January 4 , 2019, http://www.mahavidya.ca/2015/03/10/chinnamasta/

Normally the nudity and disheveled hair associated with Chinnamasta's image would indicate a loss of public respectability, but instead these characteristics reveal her sense of freedom and abandonment of societal values . The severing of head also signifies power .

Figure 2 :Ardhanarishvara[19]

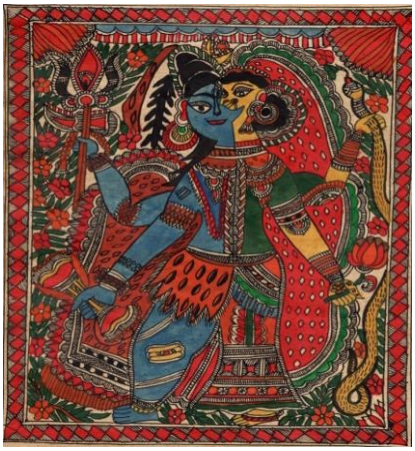

THE PAINTING :This painting shows Ardhanarishvara which is an androgynous deity composed of Shiva and his consort Shakti, representing the synthesis of masculine and feminine energies. This is also believed to be an incarnation of Lord Shiva .

The painter uses symbols like trident ,*damru* , blue skinned Shiva , snake to keep the painting culturally significant . Simultaneously , the painter tries to break away from the stigmatized traditional notions . If one must observe closely , the eye of feminine part is raised over the male part which is an attempt to deemphasize the patriarchal notion and highlight the relative importance of the female counterpart. The painter intentionally places the snake in Devi Parvati's hand and a heavy earring in Shiva's ear as compared to Devi to highlight their oneness and show that they are inseparable - male and feminine part works in unison . Devi Parvati's saree has some elements of green symbolising mother nature which is capable of generativity.

MYTHOLOGICAL ROOTS: The Samkhya texts state that there are two distinct fundamental eternal entities: the Purusha and the Prakriti which cannot exist independent of each other. They must exist together and in harmony in order to create. The Devi Bhagwat Purana says that Purusha (Shiva, in material form) worshipped and meditated on Adishakti for thousands of years, using the beej mantra "Kleem". She then incarnated in front of him in the form of Sidhidatri, from the left half of Lord Shiva. The same Purana mentions Parvati, the Goddess of power and beauty, which is considered her Sagun Swaroop (human form).

The Shiva Purana describes that the creator, Brahma created all male beings, the Prajapatis, and told them to regenerate, which they were unable to do. Brahma asked Shiva for help. To enlighten Brahma of his folly, Shiva appeared before him as Ardhanarishvara. Brahma prayed to the female half of Shiva to give him a female energy to continue creation. The Goddess agreed and created various female powers from her body, thereby allowing creation to progress. [20]

Another story of Ardhnarishvara has its roots in Sage Bhringi who tried to worship only Shiva, and ignored Parvati while worshiping Shiva. Agitated Parvati sat on Shiva's thigh so as to ensure Bhringi would not succeed and had to encircle her too . Sage Bhringi then took the form of a bee and tried to circle Shiva through the small gap between Shiva and Parvati. Infuriated with Sage Bhringi's attempts Parvati united herself with Shiva- fusing herself limb

[19]Figure - 2
https://www.google.co.in/url?sa=i&source=images&cd=&cad=rja&uact=8&ved=2ahUKEwiTpuCx9YbgAhVYi3AKHfjkCgUQjhx6BAgBEAM&url=https%3A%2F%2Fwww.pinterest.com%2Fpin%2F187743878193643699%2F&psig=AOvVaw2SE6V2_qv65VuTQirG413U&ust=1548436427840879

[20] "The Concept and Significance of Ardhanarishvara ," Speaking Tree , Accessed January 4 ,2019 , https://www.speakingtree.in/blog/the-concept-significance-of-ardhanarishvara

to limb thereby compelling Sage Bhringi to worship her as well as Shiva in the form of Ardhanarishvara.

Vāgarthāviva saṁpṛktau vāgarthapratipattaye| jagataḥ pitarau vande pārvatīparameśvarau ||[21]

This Sanskrit shloka mentions that , as the word and its meaning are inseparable, the parents of the universe Parvati and Parameshwara exist as a two-in-one entity and I bow down to them in reverence.

IMPLIED MEANING : Ardhnarishvara incarnation signifies the interdependence of Man and Woman. A Woman completes a Man. Though physically applicable , it also drives home the fact that both Man (manhood representing – discrimination, single pointed goal orientation, path to righteousness, intellectual decision making) and Woman (representing sensitivity, emotions, tenderness, compassion, passion) cannot survive in singularity ; both these complementing emotions are not competing with each other but rather need each other for survival . Ardhanarishvara signifies "totality that lies beyond duality", that God is beyond the classification of male and female. It unifies all the dichotomies of Universe .[22]As shown in the painting , wife [vamangi] sits on left side of her husband because the left side is the location of the heart and is associated with feminine characteristics like intuition and creativity, while the right is associated with the brain and masculine traits - logic, valor and systematic thought.[23]

Figure 3 : Draupadi Cheerharan [24]

THE PAINTING - This painting shows the famous episode of Mahabharata – Draupadi Cheerharan .The painter intentionally shows Draupadi in a red saree which traditionally symbolizes the married women in Indian culture , however it may even imply the danger to Draupadi's self respect . Draupadi is shown in intense worry , closing her eyes and praying to Lord Krishna for help which shows her helplessness in the present situation ; an attempt to localize the aspect of helpless women in a society dominated by men . She is shown with open hair which again implies her being ridiculously dragged to the court in tandom with the traditional perspective . The painter intentionally uses the black and red border – bright colours , to highlight the intensity of the situation and black can be seen as a rejection to the incident . The painter even tries to personify nature as God since Krishna is seen seated over the tree surrounded by nature. Also

[21]"Ardhanarishvara – Concept and Significance," The Nithyananda Family , accessed January 4 , 2019 , https://sites.google.com/site/nithyanandafamily/insight/ardhanarishvara---concept-and-significance

[22]"Ardhanareshwara," Devdutt Pattanaik , accessed 4 January,2019 , http://devdutt.com/articles/indian-mythology/ardhanareshwara-the-hierarchy-of-halves.html

[23] "The Concept and Significance of Ardhanarishvara ," Speaking Tree , Accessed January 4 ,2019 , https://www.speakingtree.in/blog/the-concept-significance-of-ardhanarishvara

[24]"Draupadi Cheerharan – Madhubani Painting ," Indian Mythology , http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00routesdata/bce_299_200/mahabharata/robekrishna/madhubani2.jpg

, the Kauravas and Pandava brothers playing game of dice brings reality of the situation to the painting .

MYTHOLOGICAL ROOTS - According to the magnus opus – Mahabharata ,the Kauravas, given their proclivity for wreaking havoc on the Pandavas, invited Yudhisthira to play a game of dice, fully aware that gambling was his weakness. Shakuni, the maternal uncle of the Kauravas, had a boon that made him the inevitable victor in any game of dice. In the spree of matches that followed, the Pandavas lost everything they owned due to the unfair means employed by the Kauravas .The last thing that the Pandavas "owned" was their wife, Draupadi, who was menstruating during the match. They lost Draupadi in the game. Kaurava prince Dushasana forcefully fetched her out and presented her before the court. Duryodhana, the eldest of the Kauravas, ordered Dushasana to strip Draupadi naked in front of the court. Draupadi would have been disrobed in front of the court that day had it not been for Krishna's intervention. However, Draupadi, humiliated by such a notion, prayed to Krishna for help who came to her rescue in the absence of any assistance from her husbands .

Shiva Purana attributes her miraculous rescue to a boon granted by Durvasa. The story goes that the sage's loincloth was once carried away by the Ganges's currents. Draupadi quickly tore a piece of her garment to cover him. The sage was pleased with her. He granted her a boon, which caused an unending stream of cloth to cover her when Dushasan was trying to strip her in Hastinapur's royal dice hall .[25]

IMPLIED MEANING :It can be compared to the *cheerharan* done to the people by modern-day governments, which justify that their actions are not illegal since they fall in the confines of the Constitution. Draupadi represents the modern day nation-state and the subjects who are stripped of their rights and are told that they are helpless since the State action is not illegal. The Kauravas represent the government that uses Dharma (Constitution) to justify their actions .This is the will symbolized by Krishna that eventually takes the shape of a revolution against the atrocities committed by the State . Krishna (conscience) in the course of Mahabharata always comes to the rescue of Draupadi (people) symbolizing Krishna as the lord of dharma.

Figure 4 a – Geeta Updesh [26]

Figure 4 b – Delivering Gita Updesh in the battlefield [27]

[25]"Lord Krishana did not save Draupadi from Cheer Haran," Speaking Tree , Accessed January 4 , 2019, https://www.speakingtree.in/allslides/lord-krishana-did-not-save-draupadi-from-cheer-haran

[26]Figure4-a https://www.google.co.in/url?sa=i&source=images&cd=&cad=rja&uact=8&ved=2ahUKEwj599Do9IbgAhVJvo8KHXPpBPsQjhx6BAgBEAM&url=https%3A%2F%2Fwww.pinterest.c

The above paintings represent the deliverance of Geeta Updesh by Lord Krishna – an incarnation of four armed Lord Vishu to Arjuna in the battlefield of Kurukshetra .

THE PAINTING (LEFT) : There is a chariot in the battle field of Kurukshetra. Arjuna as a passenger is seated at the back. The chariot is driven by charioteer Lord Krishna. He is holding the reins. There are horses leading the chariot. There are reins controlling the horses.

MYTHOLOGICAL ROOTS :The *Bhagavad Gita* is an ancient Indian text that became an important work of Hindu tradition in terms of both literature and philosophy credited to sage Vyasa . The earliest translations of this work from Sanskrit into English were made around 1795 CE by Sir Charles Wilkins. The *Bhagavad Gita* became a section of a massive Indian epic named "The Mahabharata", the longest Indian epic. There is a part in the middle of this long text, consisting of 18 brief chapters and about 700 verses: this is the section known as the *Bhagavad Gita*.[28] This is the scene of the major battle between Pandavas and Kauravs and it takes place in Kurukshetra. Krishna's purpose in coming to the material world is to deliver his devotees from the anxieties of material existence, annihilate those who disturb the universal order, and to reestablish principles of religion. His choice of Kurukshetra for speaking the Bhagavad-Gita accomplished all three of these.

Arjuna, the great archer and leader of the Pandavas, is a member of the Kshatriya caste. He looks out towards his opponents and recognizes friends, relatives, former teachers, and finally reasons that controlling the kingdom is not worth the blood of all his loved ones. Emotionally overwhelmed, Arjuna drops down, casting aside his bow and arrows and decides to quit. He prefers to withdraw from battle. His chariot driver is God Vishnu, who has taken the form of Krishna. Krishna sees Arjuna quitting and begins to persuade Arjuna that he should stick to his duty as a warrior and engage the enemy. The *Bhagavad Gita* is presented as a conversation between Arjuna and Krishna, a man and a god, a seeker and a knower prefers inaction instead of being responsible for the death of the people he loves. In the course of speaking the Bhagavad-Gita, Krishna reminds Arjuna of the eternality of the soul, the relationship between the infinite Supreme Soul and the individual soul, and how to perfect that relationship through practice of *bhakti-yoga*, Krishna conscious . By hearing from Krishna, Arjuna's anxiety is removed, and he becomes divinely inspired to fight for Krishna's cause without hesitation. As a result, he becomes Krishna's instrument for ridding the world of a huge overabundance of ungodly military forces.

---

om%2Fpin%2F180636635028852400%2F&psig=AOvVaw3ih-JlbHgPqZTr2m2NQNQP&ust=1548436173697161

[27]Figure4–b
https://www.google.co.in/url?sa=i&source=images&cd=&cad=rja&uact=8&ved=2ahUKEwizuYLE9IbgAhWaiXAKHXhmAJEQjhx6BAgBEAM&url=https%3A%2F%2Fwww.imithila.com%2FLarge-Size-Madhubani-Painting%2FiMithila-Madhubani-Painting-of-Geeta-Updesh-by-Lord-Krishna-to-Arjun--22-30-inch--Unframed-Painting-PA0918LUF031-id-3804031.html&psig=AOvVaw3ih-JlbHgPqZTr2m2NQNQP&ust=1548436173697161

[28]"Bhagavad Gita,", Ancient History Encyclopedia , Accessed January 4 ,2019 , https://www.ancient.eu/Bhagavad_Gita/

IMPLIED MEANING :The picture is symbolic of our inner instruments to train the mind and senses. The chariot is the Sarira (body). The passenger Arjuna is the Jiva (embodied individual soul). The charioteer Krishna is the Atma (Self, sometimes referred as Higher Intellect or Buddhi) leading the chariot into the middle of two armies of Kauravas (Demonic nature) and Pandavas (Divine nature) in the battlefield of Kurukshetra (Inner Battle of Mind). The reins are the operations of the Manas (Mind). The horses are the Indriyas (senses, such as, eyes, ears, nose, tongue, etc.) The roads along which this chariot is driven are the objects of the senses. All this is made possible by a joint activity of the Atma/Higher Intellect, the Senses and the Mind.[29]

In fact, the battle is still going on every day within us; this is the fight between our demonic and divine qualities. In this conflict between opposing forces, Krishna (Self, Atma, Higher Intellect) is ever on the side of Dharma (Righteousness) – the reality which sustains, not the delusion which undermines. We have Divine Guidance, our personal Charioteer, our Krishna, and our Atman assisting us throughout every battle we must fight with each of our Inner Demons.

INTERPRETATION/ SIGNIFICANCE OF THE PAINTING ON THE RIGHT (fig 4 b): In this painting , the painter breaks away from the traditional representations of Krishna delivering Geeta Updesh in the battlefield in such a way that instead of being shown as the charioteer , Krishna is shown in his Vishnu Avatar placed above Arjuna who instead is shown as the charioteer . This is an attempt to visibly portray the power divide between the two – Vishnu [Krishna] shown as superior to Arjuna [Arjuna as a discipline] . The bottom black , white boxes as in game of chess signify the war / battlefield , moreso, these are symbolic of the game of dice played between Kauravs and Pandavas which eventually led to the war . The lines flowing in all directions signify the divine light . The lotus border is shown as a resemblance to Lord Vishnu who according to mythology stays in the ocean on the lotus bed . Traditionally, Krishna is shown as dark and Arjuna as having a fair complexion but in this painting , the painter has attempted to reverse the equation by showing Krishna , in his Vishnu avatar , as fair when compared with Arjuna .The presence of Sudarshana chakra makes it definite that Vishnu is the four armed being who has incarnated as Krishna .

Figure 5 : Ganesha's Elephant Head [30]

THE PAINTING

The above painting shows the sequence of Ganesha getting an elephant head . It imbibes certain features of madhubani painting such as it represents Bharni style. Along with human subjects various other natural elements like trees and elephants can also be seen . Elephant usually symbolises prosperity and strength in madhubani art. No space is left empty. The figural motifs have been arranged in symmetrical manner. The

[29] "Gita Upadesam : The Significance of Chariot Imagery ," Umamaya , accessed January 4 , 2019 , https://umamaya.com/en/gita-upadesam-the-significance-of-chariot-imagery/

[30] Figure-5 http://ritsin.com/madhubani-painting-depicting-various-festivals-stories-etc.html/amp/#referrer=https://www.google.com

painting is characterized by careful line drawing and mature treatment of colours. Border is done with double lines showing geometric patterns forming an unbroken continuity from one side to other .

MYTHOLOGICAL ROOTS: According to mythological texts goddess Parvati created Ganesha by taking the turmeric paste from her body and breathing life into it and declared him to be her own loyal son. Once Parvati went to bathe, she posted Ganesha on guard duty at the door. In due course, Shiva came home, only to find this strange boy telling him he couldn't enter his own house. Furious, Shiva ordered his army to destroy the boy, but they all failed . However seeing Ganesha's powers , Shiva stood surprised . Seeing that this was no ordinary boy, the usually peaceful Shiva decided he would have to fight him, and in his divine fury severed Ganesha's head, killing him instantly. When Parvati learnt of this , was deeply enraged and insisted that she would destroy the entire Creation. Lord Brahma, being the Creator pleaded that she reconsider her drastic plan. Devi Parvati put forward two conditions : one, that Ganesha be brought back to life, and two, that he be forever worshipped before all the other gods. Shiva agreed to Parvati's conditions. He sent Brahma out with orders to bring back the head of the first creature he crosses that is laying with its head facing North. Brahma soon returned with the head of a strong and powerful elephant, which Shiva placed onto Ganesha's body. Breathing new life into him, he declared Ganesha to be his own son as well, and gave him the status of being foremost among the gods, and leader of all the ganas (classes of beings), Ganapati.[31]

IMPLIED MEANING: Parvati is a form of Devi, the Parashakti (Supreme Energy). She signifies the power possessed by women through which she can undo the wrong and unjust. It is said that when we purify ourselves, ridding ourselves of the impurities that bind us, then the Lord automatically comes. This is why Shiva, the Supreme Lord, came unannounced as Parvati was bathing.Ganesha here represents the ego-bound human who argues with lord just like many humans in today's world disrespect their teachers and parents. Therefore, it is the duty of the Lord, in the form of the Guru, to cut off the head of our ego. However, a second stance represents Ganesha' s arguing with his father as an attempt to protect his mother which signifies the importance of moral values in Indian children and the immense love for their parents.

Figure 6 : Sita in Ashok Vatika [32]

THE PAINTING

This picture portrays Ravana threatening Sita at Ashok Vatika in Lanka.(The Ramayana) . It highlights certain features of madhubani paintings such as figures are prominently outlined with bulging fish-like eyes and pointed noses.A combination of bright colours is used to make an impact on the viewer. This painting also involves nature elements like blossoming trees and bright red flowers , adding vibrancy to the painting that symbolises growth and life. The border clearly depicts Ram sita written in hindi clearly proclaiming and glorifying their indestructible love .

[31] " Beautiful Stories of Lord Ganesha ," Speaking Tree , Accessed January 4 , 2019 , https://www.speakingtree.in/allslides/beautiful-stories-of-lord-ganesha

[32]Figure – 6 http://ritsin.com/madhubani-painting-depicting-various-festivals-stories-etc.html/amp/#referrer=https://www.google.com

MYTHOLOGICAL ROOTS: According to the revered Hindu text Ramayana , Sita was sitting in the Ashok Vatika, sad and forlorn . Ravana had arrived there with other rakshasnis. Ravana boasted of his fame and fortune, and insisted Sita to marry him on behest of being made the Patrani of Lanka .[33]Sita held a twig in her hand and reproached Ravana. She confidently declared that Ravana can in no sense to be compared to the pride of Raghu clan , great Ram and rebuked Raavan for his cruel , sly attempt of abducting Sita. Ravana was insulted by her outburst, and threatened her by saying that if she would not marry him , then he will use Chandrahas sword to slay her . He instructed the rakshasni guards to once again threaten and bully Sita into submission so that she would agree to his proposal. Hanuman watched all this while seated on a branch of a tree in the Ashok Vatika .He gave her Rama's message, and assured her that soon Shri Rama would arrive with the vanara sena to kill Ravana and his rakshasas.

IMPLIED MEANING: Devi Sita is indeed the ideal example of a woman and possesses all the good qualities that a traditional Indian woman is expected to possess. She was the ideal daughter to her parents, ideal wife and the ideal mother . Sita's life was filled with trouble and turmoil and yet, she stoically maintained her calm and dignity showing how a strong woman should be and that she need never let go of her principles in life and hence be regarded as the epitome of womanhood.

As for Ravana he dreamt big and strove ruthlessly to achieve it just like men in contemporary era fight to satisfy their egos, to secure their property, or to simply grab what belongs to others. But just like Ravana who ultimately met a brutal end many men in today's world also end up destroying their relations, work and themselves.

CONCLUSION

Thus it can be concluded that Madhubani paintings outline a rich mythological heritage of Hinduism. The eminence of this art form lies in aiding the identification of various cultural and religious practices and traditions. Madhubani painting is a true gem of Indian cultural history.

[33] " Chapter 10 – Hanuman meets Sita and the Burning of Lanka ," Sagar World , Accessed January 4 , 2019 , https://sagarworld.com/blog/chapter-10-hanuman-meets-sita-and-the-burning-of-lanka/

आतंकवादनिरोधनार्थं संस्कृतोपाया:

स्वातिझा
तृतीयवर्षः, संस्कृतविभागः

आतंकस्य वादः इति आतंकवादः। 'आतंकवाद' इत्यस्य शब्दस्य तात्पर्यमस्ति - 'भय-चिन्तयोश्च स्थितिः', अस्य उद्देश्यं वर्तते हिंसा द्वारा जनेषु आतंकं स्थापयित्वा स्व-शक्ति प्रदर्शनम्। यत्र 'दया-धर्म-करुणा-प्रेम' इत्यादयः न भूत्वा केवलं क्रूरता, घृणा, हिंसाजनित मानसिकता च भवति। इदानीम् आतंकवादस्य अपेक्षया, अस्य कारणानि अधिकमहत्वपूर्णं प्रश्नमस्ति। यतोऽहि समस्यायाः निदानं, अस्य कारणस्य मर्दनं कृत्वा एव भवति। तर्हि, आतंकवादस्य कारणं किम्? किमर्थं जनाः इदृशी क्रूर एवं विभत्स मानसिकताभ्यां प्रेरितौ तीव्रहिंसायाः प्रयोगं कुर्वन्ति?

इदानीं नैतिकतायाः वर्द्धनं कथं भवेत्, तर्हि अत्र संस्कृतसाहित्यस्य प्रासंगिकता: उल्लेखनीया। वैदिकसंस्कृतसाहित्यात् लौकिकसाहित्यपर्यन्तं जीवनस्य पद्धति कथं भवेत्, अस्य विशिष्टतया वर्णनं कृतमस्ति। गीतायाः नाम अत्र सर्वोपरि। न केवलं भारतवर्षे अपितु सम्पूर्णविश्वे, जीवने गीतायाः उपदेशस्य अनुकरणस्य अनिवार्यता स्वीकृतमस्ति। वेदेषु अपि ऋग्वेदस्य अक्षसूक्तं मानवस्य जीवने नैतिकतायाः महत्वस्य कृते महत्वपूर्णं वर्तते। नैतिकतायाः अन्तर्गते बहवः मूल्याः वर्त्तते। परन्तु, मुख्यतया अस्य स्तमभत्रयं वर्तते- **अहिंसा, सत्य,धर्मश्च**।

महर्षिणा पतञ्जलिना योगदर्शने यमस्य व्याख्या यजमानेन निरुप्यते यत्

'अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।'-(योग. - २.३०)

एवमेव उक्तं च मनुना -

'अहिंसासत्यमस्तेयंशौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु।।-(मनु.- १.६३)

जगन्मूलत्वेन संसृतिनियामकानि तत्वानि 'धर्मः' इति व्यपदिश्यन्ते। यत्र जगद्धारकत्वं तत्र धर्मत्वं। महाभारत कृता व्यासेन जगद्धारकतत्वानां 'धर्मः' इति समाख्याता व्यधायि। **'धारणाद् धर्म इत्याहुधर्मो धार्यते प्रजाः। यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।** धर्मस्य मूलं सत्यं। सत्यमे धर्मः। सत्यं ज्योतिः, सत्यमेव जीवनं द्योतयति ज्वलति च। सत्यं ब्रह्मणस्तत्वम्। अतएव -**'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'**- इति वेदान्तविद्भिरूदीर्यते। अपि च, कपिलेन 'सत्यं' इत्यस्य व्याख्या कृता यत -**'सत्यं सर्वजगन्मूलं जगदाधारकं परम्। स्यान्नास्तिके परं ज्योतिः, सत्यं धर्मस्य जीवितम्।।**

अतएव यदि समाजे नैतिकमूल्यानाम् वर्द्धनम् करणीयं, तर्हि संस्कृतस्य विकासम् आवश्यकमेव। तत्पश्चादेव संस्कृत्याः स्थापना भवितुं शक्यते एवं आतंकवादस्य समाधानम् अपि भविष्यति यतोऽहि आतंकवादः, यः एका भयावहा वैश्विकसमस्या अस्ति, यदि समयेन समाप्तं न भविष्यति, तर्हि मानवस्य अस्तित्व एव समाप्तं भविष्यति।

भासस्य नाटके जीवनस्य अनुभवः

वंशिकातिवारी
तृतीयवर्षः, संस्कृतविभागः

भासः विविधेषु नाटकेषु, तेषां माध्यमेन् विराटलोकजीवनस्य अर्थात् सम्पूर्णलोकस्य प्रत्यक्षम् दर्शनम् अवलोकनम् स्पर्शितम् च कर्तुम् शक्यते। नाटकेषु कर्मकराभ्यः नृप पर्यंतम् अर्थात् सर्वेषां अपि सुव्यवस्थतिम् वर्णानां कृतम् अस्ति। यावत् वयंम् अवलोकयामः तावत् ज्ञायते यत् गृहस्थतः वानप्रस्थ पर्यन्तं सर्वेषां जीवनं नाटकेषु सम्निहितं अथवा लिखितम् वर्तते। कविः समाजं समीपतः अवगत्य तथा च सामाजिकानाः सुखं, दुखम्, रागः, आशा, निराशा तथा ममता-करुणा, इत्यादि सर्वम् नाटके संनिहितम् वर्तते। कविः केवलं मूकः इति भूत्वा द्रष्टारुपेण एकत्र उपविष्य केवलं अनुभूय तेन न लिखितम् अपितु लोकजीवनस्य निकटतमं मार्गात् सः गतवान् अस्ति।

नाटककारः जनानां छलछदमादिकं च दृष्टवान् अस्ति तथा च तेषां सरलतां, सहजतां अपि दृष्टवान् अस्ति। तेषां नृपाणां राज्ञीं तथा राजकुमारीणां अनुरागम्, विरागं अपि अनुभूतवान् अस्ति तथा च सेविकानां, सेवकानां सेवा अपि प्राप्तवान् अस्ति। कविः नृपाणाम् विशालं हृदयम् उदारभावं सुशांतचित्तम् हृदयम् दृष्टवान अस्ति तथा च बहुनाम नृपाणां क्रूरभावं औदार्य चित्तम् अपि अवगतवान् अस्ति।

समाजस्य प्रत्येकः अपि वर्गः तस्य(भासस्य) नाटके जीवितः अस्ति। तेषु अखेप्काः अपि द्युताः अपि सन्ति। तत्र साधु अपि अस्ति , दुष्टः अपि अस्ति। नाटके मानवः अपि सन्ति देवाः अपि सन्ति। तत्र कृपालु जनाः अपि सन्ति, दुष्टस्वभावजनाः अपि सन्ति। कविः भासः पात्राणाम् चरित्र-चित्रणे नाट्य कलायाः अद्भुतं चित्रम् चित्रयति। विशुद्धस्य प्रेम्णः यादृशं वर्णं भासेन कृतं तादृशं संस्कृतसाहित्ये सुदुर्लभं।

स्वप्नवासवदत्तम् संस्कृतसाहित्यस्य प्रज्वल्यमानं महार्हरत्नं वर्तते इति ना अत्र संशयः। नाटकमिदम् यथैव साहित्यिक दृष्ट्या महत्वास्पदम तथैव व्यावहारिक दृष्ट्यापि परमोचनस्थलम् लभते। रसलान्कारयोभावः कलापक्षस्य च प्रियः कविः इति प्रतिभाति। एवं प्रकारेन भासेन सामाजिकीव्यवस्था, रसछंदादिनाम् वर्णानाम् परस्परं क्रियान्य्यनं सामंजस्य च कृत्वान् अस्ति। यथा:-

नैवेदानीं तादृशाश्चचक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां यथा वेत्ति भर्ता भर्तृ- स्नेहात सा हि दग्धाप्यदग्धा॥(स्वपनवासवदत्तम्-६/१३)

श्रीअरविन्दस्य योगावधारणा

डॉ कामिनीकुमारी
सहायकाचार्या, संस्कृतविभाग:

अस्मिन्नदर्शने रूपान्तरणाय योगः अस्ति। कापि स्वरूपसिद्धिः रूपान्तरणात् विना न सिद्धयति इति मुख्यः सिद्धान्तः अत्र वर्तते। अरविन्दः प्रतिपादयति यत् स्वरूपज्ञानार्थमस्माकं कृते कस्यापि नूतनवस्तुनः आवश्यकता न वर्तते अपितु अस्मासु यद् गुणत्रयं वर्तते तस्मिन् योगानुसारं सम्यक् परिवर्तनस्य आवश्यकतास्ति। यथा सत्त्वस्य ज्योतिषि, रजसः ओजसि तमसश्च शान्तौ परिवर्तनं स्यादिति। इत्थं रूपेण अरविन्दस्य पूर्णयोगः दिव्यरूपान्तरणस्य योगः वर्तते। यावद् वयं प्रकृते: वशीभूताः भवामः, तावद् वयं प्रकृतेः अचेतनयोगेन संचालितः भवामः। प्रकृतेः त्यागात् वा तस्याः पृथकत्वात् न किञ्चिदपि परिवर्तनमस्मासु भवति न च प्रकृतौ किञ्चिदपि स्थायीपरिर्तनं भवति। तस्मात् श्रीअरविन्दः सत्वरजस्तमसात्मिकायाः प्रकृतेः यथाकिञ्चित् परिवर्तनं प्रतिपादयति। गुणत्रयस्य परिवर्तनार्थं अस्माभिः प्रकृतेः दिव्यान्तरणं तत्त्वान्तरणं वा करणीयं भविष्यति यतोहि प्रकृतेः परिवर्तनान्तरेण योगस्थितिः न मनुष्य: अवाप्तुं शक्नोति। केवलमात्मसाक्षात्कारेण श्रीअरविन्दस्य पूर्णयोगलक्ष्यं न सम्भवति। आदौ अरविन्देन उच्यते यत् मनःप्राणशरीराणां चेतनायाः उच्चस्तरप्राप्त्यनन्तरं भगवच्चेतनायाः अवतरणाद् एषु मनप्राणशरीराणां रूपान्तरणं भवति।

वस्तुस्तु रूपान्तरणस्य इयं प्रक्रिया विकासवादं प्रतिपादयति। वस्तुनः रूपान्तरणं तदैव सम्भवति यदा परिवर्तितवस्तुनि पूर्ववर्तिवस्तुनः अंशः पूर्वतः विद्यते। कदापि रूपान्तरणं आकस्मिकं न भवति। इदं रूपान्तरणं आरोहावरोहयोः सम्मिलितप्रक्रियायाः परिणामः भवति। यत्र निम्नावस्थायाः वस्तुनः आरोहणम् उच्चावस्थां प्रति उच्चावस्थायाश्च वस्तुनः अवरोहणं निम्नावस्थां प्रति सम्भवति। आरोहावरोहणयोः इयं प्रक्रिया विकासप्रतिविकासयोः एव प्रक्रिया अस्ति।

अरविन्ददर्शने विकासगतिः त्रिदिशात्मिका अस्ति अर्थात् अत्र विकासस्य स्तरत्रयं भवति। तच्च अधोलिखितं वर्तते-

१. व्यापकता- अत्र मनःप्राणशरीराणाम् एकस्याः उच्चस्तरचेतनायाः अवतरणार्थं उपयुक्ताधारः निर्मीयते। अत्र एतानि उच्चतरचेतनायां प्रति उन्मुखानि भवन्ति व्यापाकाधारञ्च प्राप्नुवन्ति।
२. ऊर्ध्वगमनम्- अत्र चैतन्यपुरूषस्य अभीप्सया जडतत्त्वात् जीवनतत्त्वं, जीवनतत्त्वात् मनस्तत्त्वं प्रति अग्रसरणम्, ततश्च अन्ते मनस्तत्त्वाद् अतिमनःप्रति ऊर्ध्वगमनं इष्यते। विकासस्य अस्यामवस्थायां मनःप्राणशरीराणि उच्चतरचेतनायां स्थापनार्थं प्रयत्नशीलाः भवन्ति।

३. संश्लेषणम्- उच्चतरतत्त्वस्य ग्रहणं संपरिवर्तनमेव संश्लेषणं भवति। विकासक्रमे कस्यापि अवस्थायाः सर्वथा त्यागः न जायते, अपितु परिवर्तनं भवति। अतः अतिमानसस्य प्रार्दुभावे जडप्राणमनसोः त्यागः न भविष्यति परञ्च रूपान्तरणं भविष्यति। संश्लेषणे उच्चतरतत्त्वस्य अवतरणं च निम्नतरतत्त्वस्य ऊर्ध्वगमनमिति इमे प्रक्रिये सम्मिलिते भवतः।

एताः प्रक्रियाः इत्थं रूपेण उदाहरणेन स्पष्टः भविष्यति-जडतत्त्वम् एका संश्लिष्टजटिलसंगठनात्मिकाप्रक्रियातः संगच्छते यस्माद् जीवनस्य उच्चतरविधानं तत्र अभिव्यक्तं भवितुम् शक्नोति। ऊर्ध्वगमनप्रक्रियायां निम्नस्तरात् उच्चस्तरे आरोहणं भवति। यदा जडतत्त्वं सम्यकतया संश्लिष्टं भवति तदा तस्मिन् उच्चस्तरस्य दर्शनं भवति, यः जडतत्त्वे जीवनस्य अभिव्यक्त्या उच्यते। इत्थं रूपेणैव परिपक्वे जीवने उच्चस्तरीयास्तित्वस्य आगमनं भविष्यति, यः जीवने मनसः प्राकट्येन कथ्यते। इत्थमेव प्रत्येकस्मिन् पदे चेतनायाः उच्चरूपस्य आरोहणं भवति। अन्ते संश्लेषणस्य प्रक्रिया भवति। विकासस्य उच्चतरस्तरं प्राप्तौ उच्चस्तरः निम्नस्तराणामुन्नयनत्वात् तान् स्वस्मिन् स्थापयति स्वावश्यकतानुसारेण तेषु रूपान्तरणं करोति च। एवं निम्नस्तरः उच्चस्तरे साधुतया सुव्यवस्थितः संश्लिष्टश्च भवति।
अस्मिन् विषये निम्नलिखितानि तत्त्वानि ज्ञेयानि-

१. विकासस्य त्रिविधप्रक्रिया भिन्नरूपेण कार्यं न करोति अपितु परस्परसहयोगरूपेण कार्यं सम्पादयति।
२. प्रत्येकस्तरात् उच्चस्तरस्य विकासः न भवति। विकासः निम्नस्तरात् उच्चस्तरे उच्चस्तरस्य प्रभावाद् भवति। अनेनैव प्रभावेण निष्क्रियप्रतीयमानाद् जडतत्त्वाद् जीवनं बाह्यतः अचेतनप्रतीयमानाद् जीवनाच्च मनसः सक्रियतायाः आविर्भावः भवति। विकासः निम्नस्तरस्य प्रेरणया न भवति अपितु उच्चस्तरस्य आकर्षणेन भवति।
३. विकासः(आरोहणम्) प्रतिविकासस्य(अवरोहणस्य) कारणात् सम्भवति अर्थात् विकासक्रमे यत् पूर्वं विद्यते तदैव अभिव्यक्तं भवति।
४. विकासे आरोहणं प्रत्येकस्तरस्य नूतनाविर्भावः अस्ति न तु प्राक्स्तरस्य परिणामः भवति। विकासे आरोहणं प्रत्येकस्तरस्य एका नवीनता एकः क्रमभङ्गः अस्ति। जीवनं केवलं जडतत्त्वस्य आवर्धनं नास्ति अपितु तत्र जडतत्त्वाद् गुणात्मिका भिन्नता समागच्छति। मनः केवलं जीवनस्य एकं वृहदाकारं संस्करणं नास्ति परञ्च एकस्य नूतनसिद्धान्तस्य आविर्भावः अस्ति। श्रीअरविन्दानुसारेण आरोहणस्य प्रत्येकं उच्चस्तरः कस्यापि प्राकृतिकघोषितविकासापेक्षया रूपान्तरणम् एकश्च चमत्कारः अस्ति अर्थात् विकासः समग्रः अस्ति। वस्तुतः आरोहणे यदा एकः उच्चस्तरः प्रकटीभवति तदा निम्नस्तरस्य सिद्धान्ताः अपि रूपान्तरिताः भवन्ति। जीवनाविर्भूतकाले जडतत्त्वमपि जीवनस्योपयुक्तमाध्यमग्रहणार्थं रूपान्तरितं भवति। मनसि आविर्भूते सति जीवनमपि मनसः अनुसारेण रूपान्तरितं भवति।

Department Association 2108-19

Nidhi Jha
(President)

Jyoti
(Secretary)

Vatsala Aggarwal
(Treasurer)